जैन इतिहास ग्रन्थमाला पुष्प ४

उड़ीसा में जैनधर्म

लेखकः--
डॉ० लक्ष्मी नारायण साहू
एम० ए०, एल-एल० डी०
अध्यक्ष
उड़ीसा साहित्य अकादमी,
भुवनेश्वर

वीर नि० सं० २४८५
विक्रमाब्द २०१६
क्रिस्ताब्द १९५९

श्री अखिल विश्व जैन मिशन

प्रथम संस्करण १ ०० } अलीगंज (एटा) उ० प्र० { मूल्य तीन रुपया

प्रकाशकः-
अखिल विश्व जैन मिशन.
अलीगंज (एटा)
उ० प्र०

जिओ और जीने दो !

अहिंसा परमोधर्मः यतो धर्मस्ततो जयः

निबलों को मत त्रास दो !

मुद्रकः-
महावीर मुद्रणालय
अलीगंज (एटा)
उ०प्र०

* दो शब्द *

'सुपवत-विजय-चक्र-कुमारीपवते ॥१॥१४'

खण्डगिरि-उदयगिरि के प्रसिद्ध और प्राचीन हाथीगुफा शिला-लेख के उक्त वाक्य में स्पष्ट कहा गया है कि कुमारी पर्वत से जैनधर्म का विजयचक्र प्रवर्तमान हुआ था। उसी शिलालेख से यह भी सिद्ध है कि कलिंग में अग्र-जिन ऋषभ की विशेष मान्यता थी— उनकी मूर्ति कलिंग की राष्ट्रीय निधि मानी जाती थी, जिसे नन्दराजा पाटलि-पुत्र ले गये थे। किंतु खारवेल कलिङ्ग राष्ट्र के उस गौरव चिन्ह को मगध विजय करके वापस लाये थे। 'मार्कण्डेयपुराण' की तेलुगु आवृत्ति से स्पष्ट है कि कलिङ्ग पर जिस नन्दराजा ने शासन किया था वह जैन था। जैन होने के कारण ही वह अग्रजिनकी मूर्ति को पाटलि पुत्र ले गया था। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि कलिङ्ग में जैन धर्म का अस्तित्व एक अत्यन्त प्राचीन काल से है। स्वयं तीर्थंकर ऋषभ और फिर अन्त में तीर्थङ्कर महावीर ने कलिंग में विहार किया और जैन धर्मचक्र का प्रवर्तन कुमारी पर्वत की दिव्य चोटी से किया। भ० महावीर के समय में उनके फूफा जितशत्रु कलिंग पर शासन करते थे। उनके पश्चात् कई शताब्दियों तक जैन धर्म का प्रभाव कलिंग के मानव जीवन पर बना रहा; परन्तु मध्यकाल में वह हतप्रभ हुआ। फिर भी उसका प्रभाव कलिंग के लोक जीवनमें निःशेष न हो सका। आज भी लाखों सराक-प्राचीन श्रावक (जैन) ही हैं। पूज्य स्व० ब्र० शीतल प्रसाद जी ने कलिंग, जिसे आज कल उडीसा कहते हैं, उसमें ही 'कोटशिला' जैसे प्राचीन तीर्थ का पता लगाया था; किन्तु उसका उद्धार आज तक नहीं हुआ है। अतः कहना होगा कि निस्सदेह कलिंग अथवा उड़ीसा जैन धर्म का प्रमुख केन्द्रीय प्रदेश रहा है और उसने वहां के जन जीवन को अहिंसा के पावन रगमें रगा है। यद्यपि आज उडीसा में एक भी जैनी नहीं है, फिर भी उसका प्रभाव अब भी जीवित है। उडीसा सरकार के प्रधान मन्त्री मा० श्री डॉ० हरेकृष्ण मेहताव इस प्रभाव से अपरिचित नहीं हैं। वह स्वयं अहिंसा के एक जीवित-प्रतीक हैं। उनसे जब अ० विश्व जैन मिशन ने यह निवेदन किया कि कुमारी पर्वत पर कलिंग की पूर्व परम्परा के अनुसार एक अहिंसा सम्मेलन बुलाया जाय, तो उन्होंने इस सुझाव को पसंद

किया जिसके लिए मिशन उनका आभारी है और लिखा कि इस वर्ष तो नहीं, किन्तु संभव है कि सन् १९६० में ऐसा अहिंसा सम्मेलन बुलाया जा सके। मा० प्रधान मंत्री का यह आश्वासन अहिंसा के लिये एक विशेष महत्व का है।

कलिंग में जैनधर्म के लिये एक दूसरी गौरवशाली बात यह भी है कि वहाँ के सर्वश्रेष्ठ और लोक प्रसिद्ध शासक कलिंग चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल जैन धर्मानुयायी थे। कलिंग के राजवंश में जैनधर्म कई शताब्दियों तक मान्य रहा था। खारवेल जैसे वीर विजेता के आगमन की वार्ता को सुनते ही विदेशी यवन दमत्रयस (Demiterius) मथुरा छोड़ कर भाग गया था। सचमुच भारतीय स्वाधीनता के संरक्षक वीर खारवेल थे। किन्तु यह एक बड़ी कमी थी कि इन महान् वीर शासक और कलिंग देशमें जैनधर्मके प्रभाव की परिचायक कोई भी पुस्तक हिन्दी में न थी। इस कमी की पूर्ति करने का विचार कई बार सामने आया, पर समय पर ही सब काम होते हैं।

संभवतः सन् १९५७ में किसी समय कटक के वयोवृद्ध विद्वान् डॉ० श्री लक्ष्मीनारायण जी साहू ने हमें लिखा कि वह 'उडीसा में जैन धर्म' विषयक थीसिस लिख रहे हैं, जिसके लिए उनको कई ग्रंथों की आवश्यकता है। मिशन का अन्तर्राष्ट्रीय जैन विद्यापीठ इस प्रकार की शोध को सफल बनाने के लिये ही है। अतः साहू जी को साहित्य भेजा गया और उनको पूरा सहयोग दिया गया। आखिर उनकी थीसिस पूरी हुई और उत्कल विश्वविद्यालय ने उसे मान्यता देकर साहू जी को डॉक्टर की उपाधि से विभूषित किया। यद्यपि उन्होंने इसे उडिया भाषा में लिखा था और उडियाभाषी जैनों का अभाव होते हुए भी उसका प्रकाशन कटक से सुन्दर रूप में हुआ देखकर हमें लगा कि उड़िया भाइयों में अपनी प्राचीन धर्म-संस्कृति के प्रति कितना गहन आदर भाव है। इसी समय हमने डॉक्टर साहू को लिखा कि वह इसे हिन्दी भाषा में लिखें तो यह मिशन की विद्यापीठ द्वारा मान्य की जाकर प्रकाशित हो सकती है। हिन्दी का विशेष ज्ञान न रखते हुए भी उन्होंने हमारे सुझाव को स्वीकार किया और अपने मित्रों के सहयोग से इसे हिन्दी का रूपान्तर देकर राष्ट्रभाषा को गौरवान्वित किया है। अप्रेल ५८ को भोपाल के अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा सम्मेलन में

श्रीमान् सेठ अमरचन्द जी जैन, पहाड़[illegible]
कलकत्ता

(आपके ही आर्थिक सहयोग से प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित
हो रही है। एतदर्थ धन्यवाद।)

मिशन विद्यापीठ द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ मान्य हुआ और इसके उपलक्ष में डॉक्टर साहू को 'इतिहास-रत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया। इसके लिये मिशन डॉक्टर साहू का अत्यन्त आभारी है।

डॉ० साहू ने बड़े परिश्रम से खोज करके इसे लिखा है और इसके लिये उपयुक्त चित्र भी आप ही ने हमें भेजे हैं। उनके निष्कर्ष और परिणाम अपना महत्त्व रखते हैं। संभव है कि उनसे कोई विद्वान कहीं पर सहमत न हों: किन्तु फिर भी उनकी प्रामाणिकता में संशय नहीं किया जा सकता। निस्सदेह उन्होंने उड़ीसा में जैनधर्म का परिचय उपस्थित करने में कोई कोर कसर बाकी नहीं छोड़ी है। इस वृद्धावस्था में- स्वास रोग से पीड़ित होते हुये भी- आपकी ज्ञानोपासना की लगन अनुकरणीय और प्रशसनीय है।

भोपाल मिशन अधिवेशन के सभापति पलासवाड़ी के कर्मठ वीर और धर्म प्रभावक दानवीर श्रीमान् सेठ अमरचन्द जी पहाड्या इन विद्वानों की रचनाओं से ऐसे प्रभावित हुये कि उन्होंने उसी समय ग्रन्थ प्रकाशन के लिए मिशन को पांच हजार रु० प्रदान करने की घोषणा की। सेठ सा० की इस दानशीलता से इसका प्रकाशन सुगमसाध्य हुआ है। मिशन सेठ सा० का अत्यन्त आभारी है और उनसे वह और भी विशेष आशा रखता है।

पुस्तक आपके समक्ष है जो मिशन के सदस्यों को भेंट की जा रही है। कुछ प्रतियां बचेंगी, जिनको सर्व साधारण पाठक भी प्राप्त कर सकेंगे। आशा है, पुस्तक सभी को रुचिकर होगी।

विनीत—

ऑनरेरी संचालक
अ० वि० जैन मिशन अलीगंज (एटा)

ग्रन्थ-प्रवेश

पद्मश्री श्री लक्ष्मीनारायण साहू जी ने जीवन की परिणत अवस्थामें पूर्वापर संगतिके साथ विधिवद्ध रूपसे जैनधर्मके बारे में एक ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथको ओड़ीसा विश्वविद्यालय में देकर इसके लिये डाक्टरकी उपाधि प्राप्त करनेकी सुखद कल्पना उन्हें रही। जैनधर्मके ऊपर, खास कर उत्कलके जैनधर्म के संबधमें ऐसा दूसरा ग्रंथ मैंने पहले नही देखा था। अभी तक प्राप्त पुराविद तथ्यानुकूल-उत्कलके धर्मराज्यमें जैनधर्मका जो स्थान है, उसे उन्होने इतिहास-परंपरा तथा सामाजिक विश्वास और अनुष्ठान आदिसे बहु प्रयत्न और प्रयासके साथ चुनकर लिखा है और उस पर आलोचना की है। बीच बीचमें प्रसगके अनुरोध से उन्होने ऐतिहासिक गवेषणाके नूतन आविष्कारोके ऊपर जो सादर निर्देश किया है, वह वड़ा ही सुन्दर और उपादेय रहा है।

गवेषणा का प्रकार

उत्कल तथा भारतके ऐतिहासिक क्षेत्र में ऐसी बहुत-सी बातें है जिनको सत्य या निश्चय मान लेना ठीक नही होगा। लेकिन आलोचनाके लिये नयी गवेषणाके सिद्धातोको सबके सामने रखना उपादेय है। उदाहरणके लिये सम्राट खारवेलके समयका निरूपण और 'मादला पान्जि' (पुरी का पंचाग) के 'रक्तबाहु उपाख्यान' में डा० नवीनकुमार साहु के द्वारा आविष्कृत मुरुंडवंशियोके शासनका जो आभास और आलोचना

श्री लक्ष्मीनारायण जी ने दी है, वह स्पृहणीय है।

उसमें से कुछ बातों की आलोचना—

ऐतिहासिककालीन उत्कलमें उन्होंने जैनधर्मकी परंपरा दिखाने की भरसक कोशिश की है। सम्राट् खारवेलके शिलालेख में जो 'तिवससत'वाक्य है उसका अर्थ 'तीन सौ साल'करके पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेवाले 'नंदराजा' तथा उस जमानेके उत्तरी और उत्तर-पूर्वी भारतमें मगधके राजाओंका जैन होना और कलिंग वासियोंका समधर्मी होना दिखाया है,इस बातका अनुमान करते हुए उन्होंने इस के लिये काफी प्रमाण दिये हैं। इसके अलावा सम्राट खारवेलके जमानेमें मथुरावासियोंके जैन होनेका अनुमान करके आलोचना भी की है। और खारवेलके शिलालेखमें स्पष्ट लिखा न होने पर भी उन्होंने इस बातको सत्य मान लिया है कि खारवेल मगध और अंग देशसे लूट कर बहुत धन कलिङ्ग ले गये थे। इस क्षेत्रमें श्री लक्ष्मीनारायण जी का अध्यवसाय असामान्य है।

ऐसे सिद्धांत और तथ्यों को सामने रखकर आलोचना की जाय तो एक विराट ग्रन्थ होगा, पंडित लक्ष्मीनारायण जी ने बहु योग्य सहायकोंको पाकर पुष्कलग्रंथ पाठको और उनमें से चुने हुए विषयांशोंपर नजर रखते हुए आलोचना करनेका जो परिचय दिया है वह और कहीं हो न हो,उत्कलमें असामान्य है।

इस ग्रंथ का मुखबंध मुझे लिखना है।

ग्रंथ की इस विशालता की आलोचना, लक्षित विषयांशों की विराटता और विचार की बलिष्ठता को लेकर उन्होंने जो ग्रंथ लिखा है, जिस की पूर्ति के लिये उन्होंने सात सालें, दिन तो दिन बल्कि रातको भी और रोगशय्याग्रस्त होने पर भी एकांत भावसे बितायी हैं,वही ग्रंथ है, जिसका मुखबंध लिखने का भार मुझे अर्पित किया है।

मेरी असुबिधा—

मैने इन क्षेत्रो में साक्षात् रूपसे आलोचना करना कुछ हृद तक छोड़ दिया है। ग्र थ पाठका शारीरिक श्रम भी अब मेरे लिये प्राय: सभव नही है, फिर भी इस क्षेत्रमें जो इस परिणत वयमें जो प्रतिष्ठित धारणा हो गयी है,उसके बल पर कुछ लिख रहा हूँ।

मेरा मुखबंध

श्रीलक्ष्मीनारायणजी ने जैनधर्मके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है वह सब उपादेय है,लेकिन उनके इन विचारो तथा आलोचना से जैनधर्मकी सारी बातें समझी नही जासकती। सिर्फ उत्कल या भारत में ही नही वल्कि पुराने सभ्यमानव समाज में भी जैनधर्म की बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसके सकेत और निदर्शन आज भी उपलब्ध हैं। भारत में अब भी इस धर्मकी प्रतिष्ठा,प्रभाव और प्रतिपत्ति सभी प्रचलित धर्मोंमे प्रतिष्ठित और प्रचारित हैं, यद्यपि विभिन्न कारणो से इसकी यह प्रतिष्ठा पूरी तरह दिखती जरूर नही हैं और इस्लाम या ईसाई धर्म का सा प्रचार भी नही है, जिससे कि स्पष्ट दिखाई दे।

जैन नामका एक संप्रदाय अब भी भारतमें है। पृथ्वी पर अन्यत्र जैनधर्म अभी तक स्वतत्र धर्मके रूपमे नही दिखा है,लेकिन भारत में है। और भारत का यह जैनधर्म कुछ हृद तक आदान प्रदान के कारण दूसरे धर्मोंका सा हो गया है। इसलिये उसमें श्री लक्ष्मीनारायणजी ने जैनधर्म का जो स्वरूप बतलाया है वह पूर्णत: स्पष्ट नही है। फिरभी कहा जा सकता है, कि जैनधर्म अबभी भारतमें चिरस्थायी रूपमे है। खासकर उत्कलमें प्राचीन कलिंग के कालसे इस धर्मका प्रमुख्यत्व था और प्रभाव बड़ा गहरा था। इसके बहुतसे प्रमाण हैं। अब भी जगन्नाथजीमें इस के सारे प्रमाणो की खोज की जा सकती है। इसके अलावा

आजसे करीब २५०० साल पहले इस जैनधर्म से जिस बौद्धधर्म का उद्भव हुआ था, उसकी विशेष आलोचना भी जरूरी है। इसके निर्णय में अबतक पश्चिमी और भारतीय प्रत्नतत्त्वविदो के बहुत से भ्रम रह रहे हैं। और खारवेल आदिके संबध में भी याद रखना होगा कि वे और उनके जमाने का धर्म और उनके बाद एक हजार साल के बाद का धर्म यद्यपि जैनधर्म के नामसे ख्यात है फिर भी विशुद्ध जैनधर्म नही हो सकता। मुमकिन है कि तब तक इस पर बौद्धधर्म का प्रभाव पड़ गया होगा। उत्कलमें यद्यपि वह धर्मके नामसे प्रचलित था, फिर भी शायद उसके साथ हीनयान बौद्धधर्म मिल चुका था। विशेषत. ह्यु एनसां के विवरण और बुद्धदन्त की सिंहली-परम्परासे यह जाना जाता है।

ह्यु एनसां के कालकी बात

ह्यु एनसां के काल में चीनी तथा तद्विद् पण्डितो के विचारमें बौद्धधर्म का अर्थ 'महायान बौद्धधर्म' था। उस समय पूर्वी भारत में सुमव है कि वज्रयान तक का विकास हो चुका था। इसलिये वे समझते थे कि बौद्धधर्म के माने निग्रहानुग्रह समर्थ भगवान बुद्धका धर्म अथवा शून्यवादी घोर वामाचारियों का आचार है। उस समय यथार्थ मौलिक बौद्धधर्म हीनयानी बौद्धधर्म में पर्यवसित हो चुका था। मुमकिन हैं कि जैनधर्मियों में से कितने ही हीनयानी बौद्धोके रूपमें परिचित थे। जिनको अपने धर्म के प्रतिपादन के लिये हर्षवर्द्धन ने बुलाया था, वे जैन थे।

जैनधर्म और बौद्धधर्म

अफसोस की बात है कि उन्नीसवी सदी के योरोपीय प्रत्नतात्त्विकोने इस बात को गलत रूपमें समझ कर भारत तथा ससार के लिये एक अपपरम्परा बना दी है। सुनने को

मिलता है कि पूर्वी भारतमें गौतमबुद्ध नामका कोई नामी पुरुष हुआ था, जिसने वैदिक यागयज्ञ और जातिभेद के खिलाफ अपना मत प्रकाशित किया था, बस, आलोचना उसी रास्ते पर आगे बढ़ी। तब माना जाता था कि बौद्धधर्म से जैनधर्म की उत्पत्ति हुई है। जर्मन पण्डित जैकोबी और उनके मतको मानने वालोने धीरे-धीरे इस धारणाका खण्डन किया, उनके मतमें जैनधर्म पहलेसे था। तथापि वह भी शाक्यमुनि बौद्धधर्म के समान वैदिकधर्मका विरोधी बताया गया था। लेकिन दर-असल यह धारणा गलत है। पंडित लक्ष्मीनाराणजी ने भी भ० पार्श्वनाथ तथा उनकी साधनाके प्रति सकेत करके आलोचना करते हुए जैनधर्मको इस प्राचीनता तथा परम्परा के बारेमें बहुत सी सूचनाऐ दी है। वस्तुतःजैनधर्म ससारमें मूल अध्यात्म धर्म है। इस देशमें वैदिक धर्मके आने के बहुत हो पहलेसे यही में जैनधर्म प्रचलित था। खूब सभव है कि प्राग्वैदिकोमें, शायद द्राविड़ोमे यह धर्म था। बादमे इस धर्मकी साधनामें एक दिशा सभोग-स्पृहा का नाश करने के लिए कृच्छ्र.साधनाका मार्ग और दूसरी दिशामें अतिरिक्त संभोग से ऊबकर त्याग करने का मार्ग प्रकाशित हो चुका था। शाक्यमुनि बुद्धने इन दोनोके बीचका मार्ग अपनाया था और वे अन्तिम जनधर्मके संस्कारकसे भारत मे हैं। वह अपने को साफ २ 'जिन' भी कहते थ।

शाक्यमुनि इतने बड़ क्यो हुए :-

इस मध्यम मार्गके कारण 'जिन शाक्यमुनि' लोक प्रियबने। यहा कहा जासकता है कि उनके द्वारा सस्कृत जंनभाव 'गीता' में गृहीत है। उदाहरणके तौर पर देखिये गीता बोलती है कि:-

"युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।,,
युक्ताहरप्नावबोधस्य योगी भवधि दु खहा॥*

* गीता- षष्ठ अध्याय, १७ वाँ श्लोक।

अर्थात्, जो जरूरत के मुताबिक आहार-विहार, कर्म की चेष्टा, निद्रा-जगरण करता है उसका योग दुख दूर करने वाला होता है। इसमें एक तरफ कृच्छ्र साधना और कर्ममें प्रतिनिष्ठा मना है और दूसरी तरफ भोग का स्वच्छदाचरण या यथेच्छाचार भी मना है। यही शाक्यमुनि का संस्कृत जैनधर्म या बौद्धधर्म है, और महामहिम सम्राट् अशोक ने बौद्धधर्म के रूप में इसी जैनधर्म को अपनाया था। उन्होंने एक दिन इस धर्म का प्रचार किया था और उसकाल के सभ्य जगत् में अहिंसा की साधना को कूट-कूट कर भर दिया था। इसलिए बौद्धधर्म का नाम फैल गया। लेकिन ईसवी पहली सदी के पहले इस अध्यात्म या आत्म-स्वरूप-सेवा सस्कृत जैनधर्म या बौद्धधर्म में भक्तिधर्म पूरी तरह प्रवेश कर चुका था। उसी का नाम 'महायान' पड गया है। इसके पहले का 'बौद्धधर्म हीनयान बौद्धधर्म माना गया। महायान से पूर्व जो जैन थे उनमे से बहुत से हीनयानी कहे गये।

पुरी के जगन्नाथजी इसका स्पष्ट निदर्शन है।

'जगन्नाथ' एक जैन शब्द है। यह ऋषभनाथ से मिलता-जुलता है। ऋषभनाथ का अर्थ सूर्यनाथ या जगत के जीवन-रूपी पुरुष होता है। ऋषभ का अर्थ सूर्य है। यह प्राचीन बेबिलोन का आविष्कार है। Prof. Sayce ने अपने Hibbert Lectures (1878) में साफ समझाया है कि इस सूर्य को वासन्त विषुवमें देखकर लोग जानते थे कि हल करने का समय हो गया और वे हल जोतते थे। इसलिये कहने लगे कि वृषभ का समय हो गया। उस समय आकाशमे वृषभ राशिका आरम्भ होता है। इसीसे लोगों में सूर्यका नाम वृषभ या ऋषभ पड गया। इसके पहले लोगो में यह धारणा जम गई थी कि यह सूर्य ही जगत का जीवन है। अति प्राचीन मंत्र

में भी है कि 'सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च'* । सूर्य ही इस जगत का जीवन या आत्मा है । और बेबिलोन की तरफ प्राचीन मिट्टानी देशमें भी यह बात प्रचलित थी । उस जमाने में (ईसा के पूर्व १४ वी सदी) इस मिट्टानी देशके राजा का नाम था, दशरथ। उनकी बहिन और बेटी की शादी मिश्र के सम्राटो के साथ हुयी थीं, उनसे प्रभावित चतुर्थ आमन हैटप् या आखनेटन ने आटेन (आत्मन्?) के नामसे इस सूर्यधर्म का प्रचार किया था और यह सूर्य या जगत की आत्मा ही परमपुरुष या पुरुषोत्तम है—ऐसा प्रचार करके कुछ हद तक धर्म-पागल हो समग्र साम्राज्य बाजी रखनेका प्रमाण इतिहासमें इसकाहै । कलिंगमें खूब संभव है कि द्राविडोमे इस 'जगन्नाथ'का प्रकाश हुआ था । मिश्रीपुरुषोत्तम और पुरीके पुरुषोत्तम, दोनो इस जैनधर्मके फलहैं।

दाठा वश (दत का इतिहास)

सिंहलमें 'दाठा वश' नामका एक प्राचीन ग्रंथ है । यह पुरी के बुद्धदंत का इतिहास है । इसमें लिखा है कि बुद्ध की चिता भस्ममें से सगृहीत बाया विषदत बुद्धके शिष्योने खेम के हाथ कलिंगराज ब्रह्मदत्त के पास भेज दिया था । बौद्ध-साहित्य में राजाओ का नाम 'ब्रह्मदत्त' होना आम था । उस समय बाराणसी आदि के राजाओ का नाम ब्रह्मदत्त होने का प्रमाण उपलब्ध है । और बुद्धके चिताभस्म से सगृहीत स्मारको में से इस बायें विषदंत के सबध में उत्तर भारत या चीन आदि देशोमें कोई चर्चा नही है । लेकिन सिंहलमें इसकी एक लम्बी चौड़ी परपरा है। दाठावश में लिखा-है—ब्रह्मदत्त ने बड़े आदर के साथ कलिंग में इस दत की प्रतिष्ठा की थी। उत्तर भारत के मगध के पाण्डुराज इसे बडे प्रयत्न के बाद अपने अधिकार में लेकर दत की अद्‌भुत क्रिया के कारण उसे ध्वस्त

* ऋग्वेद-१-११५-१ ।

करने में असमर्थ हो कर खुद दत के भक्त वन गये थे । इसी बीच क्षीरधर नामका राजा इस दतके लिये पांडुराज पर आक्रमण करके खुद युद्धमें मरगया था । अंतमें जब वह राज्य छोड सन्यासी बने तब स्वयं पाडुराजने कलिंगराज गुहशिव के जरिये इस दत को कलिंग में वापस भेज दिया था । गुहशिव इस दत के लिये अपने दतपुर में ही क्षीरधर के भतीजे के द्वारा अवरुद्ध हुए, इधर उज्जयिनी के राजकुमार ने आकर कलिंगराजकुमारी हेममालासे शादी की। गुहशिवने उन दोनो के हाथ दत का भार सौंपा, दोनो का नाम हुआ दंतकुमार और दतकुमारी, दोनो दत को लेकर जहाज मे सिंहल गये। इस हिसाब से मालूम होता है कि ३११ ई० में यह दंत सिंहल पहुंचा था । यह भी सिंहलके एक शिलालेखसे समर्थित होता है।

दन्तका इसके बादका इतिहास बहुत लम्बा है: उससे मालूम होता है कि दत नाना स्थानो में गया है। कलिंगसे सिंहल, सिंहल से ब्रह्मदेश और उसके बाद रोमन कैथलिक मिशनरियो के हाथ गोआ में पहुंचा है। और वही मिशनरियों के द्वारा लिहाई पर चूरकर समुद्र में गया है । लेकिन सभी कहते हैं कि असली दात हमने छिपा रखा है। दंत जिधर भी गया है या जिसने भी लिया है वह एक नकली दंत है । इसलिये ज्यादा लोग विश्वास करते हैं कि असली दत अब भी कलिंग या पुरी में मौजूद है और जगन्नाथ जी के पेटमे ब्रह्मरूपमें है। आजके जगन्नाथ चतुर्धा जरूर है या सुदर्शनको छोड़ त्रेधा है—जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा। इन तीन मूर्तियों के पेटमें दंतके तीन भाग ब्रह्मरूपमें रखे हैं या और कुछ है-इसके बारेमें कोई ठीक ठीक कह नहीं सकता। कुछ भी हो, इससे स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में जो सिंहलो दंतका गल्प है वह पूर्ण रूपसे बुद्धदत का गल्प नहीं है। कलिंगमें जैनोंके जिस जिनशासनपीठके होनेकी बात

हाथीगुफा के खारवेल के लेखसे प्रमाणित होती है, उसीका यह बौद्ध-संस्करण है। यह जगन्नाथ की परम्परा मूलतः पूर्णरूपमें जैनधर्म की है। 'नाथ' शब्द पूर्णरूपसे जैनधर्मका निदर्शन है। संस्कृत मे नाथके माने होता है— जिससे माग की जाती है। लगता है, पहले इसका अर्थ उपास्य 'आत्मारूपी पुरुष' था। कालक्रमसे बादको इसका अर्थ भक्तिधर्मके अनुसार होगया है।

जैनधर्म अध्यात्म धर्म है —

जैनधर्मको समझनेके पहले यह समझना जरूरी है कि धर्म क्या है ? ससारमें दो प्रकार का धर्म होता है। पहला भक्तिधर्म और दूसरा अध्यात्मधर्म है। भक्तिधर्म एक प्रकार से मानव का स्वभाविक धर्म होता है। पहले लोगो को अधिक शक्तिशाली पूर्वजो से भक्ति होती थी, इसीसे धीरे धीरे साम्राज्य के भावका उदय हुआ, क्रमश. राजाओ और सम्राटोंका अत्याचार बढने लगा और उससे 'एकेश्वरवाद' नामका प्रतिष्ठित कुसस्कार प्रकाशित हुआ। उसीके लिये इस ससारमें जो विवाद, द्वन्द्व और नरहत्या की गई है उसे समझाने जायें तो धर्मध्वजी मताधता तथा असहिष्णुता के साथ अपना धर्मभाव प्रगट करेंगे, उसको वर्णनाअनावश्यक है। यह अनुमेय है कि ऐसे ही एकदिन असुरदेशके असुरदेवका उत्थान हुआ था। और वे ही एक तरफ इस अत्याचारके दूसरी तरफ इस एकेश्वरवादके मूर्त प्रतीक थे। लोग जो कुछ उपजाते थे, सब कुछ करके रूपमें इस असुरदेव को दे देते थे अगर न दिया तो अत्याचार सीमा पार कर जाता था। यहा तक कि नारियो और शिशुओ को मनमाना कतल करके फेंक देते थे, और उनके मुख्य पुरुषोंकी जिन्दा चमडी उतार लेते थे।

जो उसके खिलाफ जबान खोलता था, जासूस से पता चलाकर उसके पास उड़कर जाते थे और उसे पकड कर उस

पर अत्याचार करते थे। असुरों के पास थे वेबिलोनके प्रधान देव 'मर्दूक' वे भी असुरो से बिगडे हुए थे। वैसे असुर भी इन के सभ्यतर तथा संयततर आचरण को सहन कर नही सकते थे। इन दोनोके बीच लम्बे अरसे तक घोर विवाद चलता रहा बादको एक फारसी मध्यमपथी आर्य जराथ्रुष्ट (जिसका ऊँट पीला था) ने कहा—असुर और मर्दूक—ऐसे दो ईश्वर नही हो सकते। ईश्वर एक है। और वह है 'असुर मर्दूक' या अहुरमेजदा इस अहूरमेजदा का एकेश्वरवाद फारस से भूमध्यसागर तक दो सौ से अधिक साल व्याप्त रहा। यहूदी इस देशमें आकर गिरफ्तार हुए थे। कुछ कालके बाद इन यहुदियोको रिहा कर दिया। इनकी जातीय-देवताका नाम था 'जिडहे'। इन यहुदियो को बडा घमड था कि वे अपने देव के बड़े प्यारे है। वे अपने को बड़ा देवभक्त मानते थे। अहुरमेजदा के बाद उन्होंने अपने देवका नाम रक्खा 'जिहोवा' जो सारे संसार का एक ईश्वर बना दिया। इसीसे ईसा, महम्मद आदि पुत्र, दूत और अवतार हुए जिससे आज ससारमे धर्मकी मतांधता तथा प्रतिक्रिया परिव्याप्त है।

इस धर्मकी प्रतिक्रिया

ऐसे अत्याचारके विरुद्ध आत्मज्ञानी लोगो का सिर उठाना स्वाभाविक है। वैसे लोग सोचने लगे कि संभोगकी स्पृहा या तृष्णा को छोडदेने से ही ऐसे राजाओ या सम्राटो के अधीन रहने के दुखसे मुक्ति मिलेगी। इन विरुद्धमतवालो ने जनसमाज को छोडकर, तृष्णारहित हो, वनमें पेड के फल और झरने के पानीमे गुजारा किया और पशुपक्षियो के साथ निश्चिन्त जीवन बिताया। उन्हींको देखकर हमारे देशमें एकबात कहीजाती है कि-

"स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनाप प्रपूर्यते ।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे क. कुर्यात् पातक महत् ।।"

—०—

अर्थात्–स्वच्छन्द वनजात शागसे अगर पेट भर जाता है तो उसी पेटके लिये इतना पाप करने की जरूरत क्या है ? इधर उदर पूरणके माने होता है हरएक प्रकारके भोग या वासनाओं का पूरण। ये ही आत्मस्थ है और अपने में जो आत्मा या पुरुष है उसकी उपासना करते हैं। इसलिये इनका धर्म अध्यात्मधर्म कहलाया और यही अध्यात्मधर्म जैनधर्म होता है। इस जैन-धर्मके बारेमें मशहूर जैनपण्डित जुगमन्दरलाल जैनी ने कहा है—"जैनधर्म ने मनुष्य को पूरी स्वाधीनता दी है। यह दूसरे किसी भी धर्ममें नही है। हमारा कर्म और उसका फल-इन दोनोके बीच और कुछ नही है। एकबार किए जानेपर वे हमारे नियामक बन जाते हैं। उनके फल अवश्य ही फलेगे। मेरी आजादी जैसे कीमती है, मेरी जिम्मेदारी भी वैसे खूब कीमती है। मै अपनी इच्छा के अनसार अपना जीवन बिता सकता हूँ। लेकिन एक बार जो रास्ता चुन लिया है उससे वापस आने का कोई उपाय नही। मैं उस रास्ते को चुन लेनेका फल अन्यथा नहीं कर सकता। इस नीति के कारण जैनधर्म ईसाई इस्लाम और हिन्दूधर्म से भी अलग हो जाता है, खुद भगवान या उनके अवतार या उनके स्थलाभिषिक्त अथवा उनके प्रिय (पुत्र या पयगम्बर) को मनष्य कर्मके फल पर हस्तक्षेप करनेकी ताकत नही है। आत्मा जो भी करती है उसके लिये आत्मा ही प्रत्यक्ष रूपमें और निश्चित रूपमें जिम्मेवार है।"

Jainism more than any other creed gives absolute religious independence and freedom to man. Nothing can intervene between the actions which we do and the fruits thereof. Once done, they become our masters and must fruitify. As my independence is great, so my responsibility is coextensive with it. I can live as I like,

but my choice is irrevocable, and I cannot escape the consequences of it. This principle distinguishes Jainism from other religions; e.g. Christianity, Muhammadanism, Hinduism. No God, or his prophet or deputy, or beloved, can interfere with human life. The soul, and it alone is directly and necessarily responsible for that it does.*

इयावाणी और ऋष्यश्रृंग

वेबिलोन के प्राचीन इरेक राज्य में जो इयावाणी थे और भारतमें अगदेशके जो ऋष्यशृ ग थे,इन दोनोके उपाख्यानोका उल्लेख जरूरी है। इन दोनो उपाख्यानोमें विद्रोहके आदिम जैनोंका निर्देश किया गया है इसतृष्णा-त्याग तथा इन्द्रियसयम में इनके लोकोत्तर आध्यात्मिक और शारीरिक बलके प्रकाश की बात इन उपाख्यनो से मिलती है। ये दोनों रहते थे वनमें, खाते थे फल फूल, पीते थे झरने का पानी और बसते थे पशु-पक्षियो के साथ, दोनों उपाख्यानो में है कि स्थानीय राजाओं ने इन्हें सुन्दरी के लोभमें भुलाकर अपने शहरमें लाकर असाध्यसाधन किया था। भारतके ऋष्यशृ ग का उपाख्यान इस इयावाणी (कुछ लोगों ने पढा है 'एकिडो') के उपाख्यान से मिलता जुलता है। फर्क यह है कि ऋष्यशृ ग 'उपाख्यान' पुराण-परम्परा में उपलब्ध है, लेकिन 'इयावाणी—उपाख्यान' अत्यत प्राचीन लेख में मिलता है। उस हिसाब से यह आजसे ५००० साल से अधिक पुराने जमाने की बात है। यह उस जमाने के सुमेर देशके इरेक देशकी बात है।

थेरपुत्त

शाक्यमुनि बुद्धके धर्मका बौद्धधर्ममें 'सघो' का विकास

*Outlines of Jainism by Jugmandarlal Jaini. PP. 344.

हुआ था। इन संघो में जैन साधकों के समान लोग संघबद्ध रूपमें सभी संघमें बराबर हो रहकर लोगोकी सेवा करते थे, औषधिका प्रयोग और बाट इस लोकसेवा का मुख्य अवलम्बन था। इन सघो के साधक और सिद्धोको थेर या स्थविर कहते थे। थेर या थेरपुत्त के माने होते है स्थविर पुत्र या साधु, 'थेरपुत्त' बौद्धशब्द है और 'साधु' जैनशब्द है। इसीसे उत्कल-का 'साधव' शब्द बना है। बौद्धधर्मके प्रचार के बाद ये साधु देश विदेश में थेरपुत्तके नामसे परिचित थे। ईसासे पूर्व दूसरी, तीसरी सदीयो में इन थेरपुत्तोके मिश्रमें होनेका प्रमाण है। यत्रतत्र पहुँच कर मरीजों की सेवा करना इनका मुख्य काम था, अंग्रेजी Therapeutics (थेरापिउटिक्स) का अर्थ होता है भेषजविद्या। यह सभी जानते है। यह थेरापिउटिक्स शब्द प्राचीन प्राकृत थेरपुत्तिक से बना है। यहाँ ख्याल रखना चाहिये कि यह एक ग्रीक शब्द है जो उस जमाने में मिश्र से आया था।

एसोन्स

ईसाके जन्मके पहले पालेस्ताईन में इन थेरपुत्तो के समान कुछ लोग दलबद्ध होकर बसते थे, जिनको एसीन्स कहते थे। ये उनके समान थे। लेकिन इनकी एक खास विशेषता थी। ये मिलकर खेती करते थे लेकिन दौलत पर किसीका स्वतत्र अधिकार न था। सबका हिस्सा बराबर था। यह एक विद्दिष्ट जैनविधि है। खुरधा के भोइवशीय राजाओ ने बहु काल के बाद भी पुरी जिलेके ब्राह्मशासनो में १५९०ई० से स्पष्टरूपमें इस नीति का प्रयोग किया है, अब भी ग्रामकोठ[1] तथा देवोत्तर आदि में उस साम्यभाव का सकेत जीवित है।

१— ग्रामकोठ-गाँवमें जो काम समूहिक भित्तिमें होता है और जिस पर गाव का हरएक आदमी समान अधिकार रखता है।

ग्रामकोठ में बड़े छोटेका विचार नहीं है। हर एक का हिस्सा बराबर है। जब गाँव बना तब भी हर एक को एक एक हिस्सा मिला था। इस हिस्से को पाने में सभी बराबर थे। किसीका ज्यादा न था, किसीका कम भी न था। ये एसीन्स शादी करके गृहस्थाश्रम नही करते थे। प्रमाण मिला है कि ये पूरपूर संन्यासी थे। लेकिन वंशपरंपराकी रक्षाके लिये नये शिष्य ग्रहण करके अपने गणकी वृद्धि करते थे। ये और मिश्री थेरपुत्त निरामिषभोजी थे। यह निरामिष भोजन न तो वैदिक है और न किसी दूसरे धर्मकी रीति है। इसमें कोई शक नहीं है कि यह तृष्णात्याग की साधनासे निकली है।

पैथागोरियन्स

यह निरामिष भोजन प्राचीन ग्रीस् (यूनान) के पैथागोरियन्सो (ईसा के पूर्व ७ वी सदी के अन्तिम भागमें) और आरफिको (ईसाके पूर्व ७वी सदी के मध्यभाग में) प्रतिष्ठित था। और यह भी ज्ञात हुआ है कि इनकी धारणा थी-आत्मा अमर है। कर्मके अनुसार इस आत्मा का जन्मान्तर होता है। यह सब सिवाय जैनधर्मके और कुछ नही है, बाद को सक्रेटिस, प्लैटो, एरिस्ततल आदि मनीषी और पंडित इन पैथगोरियन और आरफिक धर्मके वंशधर और भूयोविकास के फल हैं। खास करके देखना है—सक्रेटिस और प्लैटो ने आत्माकी अमरताके बारे में स्पष्ट धारण दे दी है। लेकिन एरिस्ततल ने अपने दर्शनशास्त्रमें जो कुछ लिखा है उस पर सांख्य के प्रकृति-पुरुष और जैनधर्मके जीवाजीव की छाया स्पष्ट हैं। और इस धर्मसे ईसाके पूर्व दूसरी सदीमें यूनानी स्तोईक और एपिक्यूरियन धर्मका जन्म हुआ था। स्तोईक जैनसाधक और तपस्वी प्रतीत होते हैं। और एपिक्युरियन जैनकी अपरसीमा अर्थात् लोकायत के उपादान से बना था।

यह सब जैनधर्म का फल है–

जैनधर्मके सारे सकेतो की कलना करते स्पष्ट मालूम देता है कि इस धर्मका प्रभाव बेबिलोनसे लेकर योरोप तक कम व्याप्त न था। जिस यूनानी जीवनका उदाहरण दिया गया है वह फिर मूलत: दूसरे प्रकारका था। यह भिन्न उपादानोसे बना था यह था भोगसर्वस्व, अर्थात्, भोगलालसा और कामना को चरितार्थ करना इसमें पूरी मात्रामें था। लेकिन ईसाके पूर्व ७ वीं सदीमें मनीषी पैथागोरस निकले। वे एक जैनसाधक थे और जैनसन्यासी भी। और उस देश और इस देशका सम्बन्ध सिर्फ इयावाणी और ऋष्यशृंगके उपाख्यानसे अनुमित नहीं होता, बल्कि अति प्राचीन कालमें भी बेबिलोन, केपाडोसिया (आजका इराक और तुर्किस्ताँ) आदि पच्छिमक देश और भारतका द्राविड़देश–दोनोका सम्बन्ध घनिष्ठ था। शायद दोनों में एक जातिके लोग थे।

देवीधर्म

इसके प्रमाणो में देवीधर्म मुख्य है। मा,बोड, अम्मा आदि मातृवाचक शब्द द्राविडोमें पाये जाते हैं। अबभी उत्कल में माँ को बोड कहते है। बहुकालके बाद संस्कृतमें 'मा'लक्ष्मी वाचक शब्द बना है। यह सस्कृत के 'मातृ' शब्दके समान नही है। 'बोड'शब्द उत्कलके अलावा असममें अबभी चलता है। लेकिन ये शब्द उस जमानेमें, अर्थात् ईसाके पूर्व ३०००साल पहले उन पश्चिमी राज्योमें मातृदेवीके अर्थमें अत्यन्त साधारण थे। क्रीट द्वीपसे अबभी सिंहवाहिनी देवीदुर्गाकी पत्थरकीमूर्तिनिकलीहै।

उमा

इस मातृदेवीके साथ शिवका भी आविर्भाव हुआ था। इसकी व्याख्या अत्यन्त स्वाभाविक और सुबोध्य है। महायोनि और महालिंग विश्वप्रजनन के प्रतीक हैं। पश्चिमी भूमिमें उस

जमानेसे इसी रूपमें मातृदेवीकी पूजा हो रही थी, भारतमें ईस के पूर्व २००० सालसे अधिक पहले लिंगोपासना के होने के प्रमाण महेन-जो-दडोसे मिले है। लेकिन यह लिंग इसदेश के समोदर्शनोके प्रतीक हैं। और मातृदेवी की 'उमा' नामसे हैम-वतीदेवी के रूपमें देवताओ को ब्रह्मविद्या सिखाने की बात केनोपनिषत्के तीसरे खण्डमें है। शायद, अम्मा उमामें परिणत हो गया है। और यह हैमवती अर्थात् हिमालयकी कन्या या हिमालय में आविर्भूत देवी है।

सेमिरामिस

इस मातृदेवोके सम्बन्धमें ईसासे पूर्व १५०० या २००० साल पहले बेबिलान के उत्तरी सीमा में असुरो के देशमें रानी सेमिरमिस रहती थी। यह एक अद्भुत उपाख्यान है। देवी को प्रजनन परायणता तथा तद्विध क्रियाओं से यह भरपूर है, शायद, यह किसी एक छोटी-सी स्मृतिको लेकर बना एक पुराण है। तो भी उसमें है–देवी इस कन्याको जन्मके बाद ही जगल में छोड़के चली गयी। कुछ कबूतर या पक्षियो ने इसकी हिफाजत की और उसे जावित रखा। किसी गडेरियेने इसे देखा और घर ले जाकर पाल-पोसकर बडा किया। वह खूब हसीन और मस्तमस्त थी, कहते है–बेबिलोनकी इस्तर देवीके समान यह भी एक के बाद एकसे शादी करती थी और उसे मारकर दूसरे को अपनाती थी। इसके बारेमें परम्परा इतनी प्रबल और प्रतिष्ठित है कि अब भी उस इलाके लोग बड़ेबडे पहाड़ दिखते हुए कहते है– यहां सेमिरामिस के पति दफनाये गये हैं। और सेमिरामिस महापराक्रमशालिनी थी। कहा जाता है–सिर्फ भारत जीतने के लिये आकर पजाब में हारकर लौट गयी।

शकुन्तला

शकुन्तला की कथा भी है–देवी या स्वर्वेश्याकी परित्यक्ता

शिशु शकुन्तला वनमें पक्षियो की हिफाजतमें थी और कण्वने उसे उठा लिया और अपने आश्रममें पालपोस कर बढ़ाया। बहुपत्नीक राजा दुष्यन्त को देख आवेग के साथ उसने आत्म-समर्पण किया। और उससे वह गर्भवती हुई-आदि बातो की आलोचना सेमिरामिसा की बातसे मिलती-जुलती है। लेकिन इस सबके होते हुए भी भारतीय उपाख्यानमें सतीत्वके आदर्श को ऊंचा स्थान दिया गया है—इतना ही फर्क है। लक्ष्य करने की बात है कि इस शकुन्तला का पुत्र प्रवलप्रताप सम्राट भरत बना जिसके नामानुसार कोई २ कहते हैं कि इस देशका नाम भारतवर्ष पडा है।

द्राविड़ से रोम तक एक था

इस तरह देखा जाता है कि द्राविडसे यूनान, रोम तककी भूमि अति प्राचीनकालमें कदाचित् एक-सी थी। इनके आदान-प्रदानमें कोई प्रत्यवाय या अवरोध न था। जैनधर्मने इन स्थानोंमें सर्वत्र प्राकृत धर्मको प्रभावित करके मानव समाज को भोग से संयम पर प्रतिष्ठित किया था। हलसाहब स्पष्ट कहना चाहते हैं—इन द्राविड़ोके साथ बेबिलोन आदि इलाके केवल सामान्य राज्य ही न थे, बल्कि इन द्राविड़ो ने प्राचीन सुमेर राज्य में उपनिवेशभी आबाद किया था और कितने ही विद्वानभीकहते हैं कि सुमेरमें जिनका उपनिवेश था वे काश्मीरके उत्तर के पामीर इलाके के पश्चिमी प्रदेशसे आये थे। आजकलके जेकोस्लावे-किया देशके प्रेग(Prague) नगर के प्राध्यापक प्राच्यप्रत्नतत्त्व-वित् पण्डित ह्लोजना साहबने एक अत्यन्त उपादेय तथा गवेषण-पूर्ण ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है 'Ancient History of Western Asia, India and Crete.' उसमें उन्होने प्रमाणित किया है कि हिन्दी-योरोपियोके कस्पीयन झीलके पश्चिमी तीरसे आकर योरोप और एशिया के नानास्थानो में व्याप्त

होने के बहुत ही पहले दूसरी सभ्यजातिके लोग उसी कस्पव झीलके दक्षिण तीरसे आकर इधर भारत और उधर वेबिलोन आदिमें फैले हुये थे। इनका सम्पर्क और आदान-प्रदान उस जमाने में बड़ा ही घनिष्ठ था।

अब मालूम होता है कि मातृदेवीधर्म या शक्तिधर्म के समान जैनधर्मके प्रथम अध्यात्म धर्म होने पर भी, उनके खास-खास कर यह जैनआदर्श तथा जैनसाधना मार्ग प्राग्वैदिक भारतमें, अर्थात् उस सभ्यजातिके द्राविड़ोंमें से विकसित हो कर पृथ्वी में व्याप्त हुआ था। लक्ष्मीनारायण जी ने उत्कल तथा भारतके आचार-व्यवहार में जैनधर्म के पूर्ण प्रभाव का होना दिखाया है। विशेषतः इसके सबधमें तत्त्वव्याख्या करते हुए उन्होने जैन हरिवंश से नारद और पर्वत के उपाख्यान को लेकर एक अच्छा उदाहरण दिया है।

उपरिचर वसु

यह एक अत्यत प्रदर्शक उपाख्यान है। और नारद और पर्वत का झगड़ा था यज्ञ में व्यवहृत 'अज' को लेकर। पर्वत का कहना था— 'अज' का अर्थ है बकरा या पशु, अतः पशुवध ही यज्ञका प्राण है। नारद ने इसे स्वीकार नही किया। उन्होने बताया कि अज के माने जिससे कुछ जात नहीं होता, अर्थात् पुराना अनाज। यहां हिंसा-अहिंसा-मूलक सामिष और निरामिष खाद्य का भेद प्रकीर्तित है। धर्म कौन-सा है? निरामिष भोजन या सामिषभोजन? भारत में यह समझानेकी कोई जरूरत नहीं। भारतमें सामिषभोजियो के होते हुए भी निरामिष हर एक का पवित्र और धर्मसम्मत भोजन माना हुआ है महाभारतके* नारायणीय उपाख्यानमें राजा उपचिर वसुको चर्चा है। देवताओ और मुनियोका यही झगड़ाथा। देव कहते

* वनपर्व-३३६ अध्याय से (बगवासी सस्कार)

अजके माने बकरा है। और मुनियो ने कहा- नही, अज का अर्थ अनाज है। उपरिचर वसु, जिन्होने आकाश में सचरण करने की शक्ति प्राप्त को थो, उस रास्ते से गुजरते थे। दोनो पक्षों ने उन्हें मध्यस्थ माना। उन्होंने पहले यह देखा कि किस पक्ष का मत क्या ह। फिर कहा-पशुवध हो ठीक अर्थ है। ऋषियो ने उनकी स्पष्ट पक्षपातिता देखकर उन्हें अभिशाप दिया। अभिशप्त अवस्थामें नारायणीय धर्म या ऐकान्तिक धर्मकी उपासना करके वे शापमुक्त हुए।

लगता है—यह ऐकान्तिक धर्म फारसका है। खूब सम्भव अहूरमेजदा का धर्म है। उसी उपाख्यानमें इसके प्रमाण हैं। बादको जरूर यही धर्म उधर ईसाईधर्म और इधर वैष्णवधर्म का रूप लेकर प्रकाशित हुआ है। ईसाईधर्मके मूलमें जैनधर्म की कृच्छ्रसाधना के समान तपस्या और सयम है। थेरपूतिक (TheraPeutics) और पालेस्ताईन के उस जमानेके एसीन इसके उदाहरण है। लेकिन निरामिष भोजन उसमे स्थायी बन न सका। इधर यह ऐकान्तिकधर्म वैष्णवधर्म या भक्तिधर्म हो गया है। अबभी इस देशमें जैनधर्मियो के अलावा वैष्णव ही निरामिषके उपासक है। इसमें यह और समझनेकी आवश्यकता नही है, यह जैनधर्मका प्रभाव है। सिर्फ इतना ही यहा कहना है कि इस वैष्णवधर्म के समान धर्म या सपूर्ण आत्मसमर्पण करने का धर्म जैनदर्शनके ऊपर प्रतिष्ठित नही है। यह हो नही सकता। फिर भी जैनधर्मके प्रभाव देखनेमें यह खूब उपादेय है। इस तरह जैनधर्म ससार के सारे धर्म तथा मानविक आत्मविकासके मूलमें है। कहाजा सकता है कि इसी के ऊपर मानव-समाज के विकास की प्रतिष्ठा आधारितहै।

भुवनेश्वर
ता० ६-६-५८

नीलकंठ दास

छिन्न-पल्लव

पंडित लक्ष्मीनारायण साहू एक ऐसे प्रख्यात् साहित्यकार हैं कि उनका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं! फिर भी पाठकों की जिज्ञासा की पूर्तिके लिए संक्षपमें यहा पर उनका परिचय देना उचित है। वह उड़ीसाकी विभूति है। सन् १८६०ईसवी में उनका जन्म बालेश्वर जिलेके एक हलवाई वंशमें हुआ था। वह जन्मे तो १६ वी शताब्दी में हैं, परन्तु उनका नाम और काम चमका २० वी शताब्दी में। उनकी विशेषता यह है कि यद्यपि वह एक नितान्त दरिद्र परिवारमें जन्मे थे किन्तु उनके कुटुम्बमें यह दरिद्रता आकस्मिक थी। वैसे उनके पितामह एक बड़े धनी व्यापारी थे अकस्मात् प्रकृतिके कोपसे उनके पितामह की मृत्युके पश्चात् उनके पिताका सबकुछ घरबार, कोठा महल आदि और जहाज—व्यवसाय नष्ट हुआ था। लक्ष्मीनारायण बाबू बचपनमें अपने पिताकी दूकान पर बैठकर मिठाई बनाते और बेचते थे। किन्तु उनका उज्ज्वल भविष्य उनके जीवनको कनखियोसे झांक रहा था। उनकीप्रतिभाको देखकर बालेश्वर जिला स्कूलके प्रधानअ०श्री लोकनाथ घोष उनपर सदय हुयेऔर उनकी ही सहृदयतासे इनको अधिक उच्चशिक्षा पानेका सुयोग मिला, सन् १६०८ मे बालेश्वर जिला स्कूल से ऐंट्रेन्स पास किया। सस्कृतमें एकपदक और एकवृत्ति भी उनको मिली थी।

इसके बाद ज्यो त्यो करके उन्होने कटक रेवेन्सा कालेज में शिक्षा पाई। मार्गकी अनेक विघ्न-बाधाओ और दुःख दूरवस्थाओ को पार करके वह आई०एस-सि० परीक्षा में उत्तीर्ण

डॉ० लक्ष्मीनारायण साहू
एम० ए०, एल० एल० डी०

अध्यक्ष
उड़ीसा साहित्य अकादमी, भुवनेश्वर

(लेखक)

हुए। उसके बाद कलकत्तामें शिवपुर इनजिनियरिंग कालेज में दो वर्ष ही पढ पाए कि अर्थाभावके करण छोड़कर चले आए। उपरान्त शिक्षा-व्यवसाय उनको रुचिकर हुआ। वह पुरी विक्टोरिया होटल में मैनेजर हुये और फिर कटक मिशन स्कूलमें चार वर्षों तक शिक्षक रहे। वहा से उन्होने बी० ए० और संस्कृत मध्यमा आदि पास किए। गीतामें उनको 'तत्वनिधि' उपाधि और वगला साहित्यमें दक्षताके लिए 'विद्यारत्न' उपाधिभी मिली।

मिशन स्कूल छोडकर उन्होने भारत सेवक समितिमें योग दान देनेके लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। आजकल भी उस समितिके सदस्य है और उसका काम करते है। अब उस समितिका नाम परिवर्तन होकर "हिन्द सेवक समाज" हुआ है। बालकपन से ही वह समाज सेवामें मस्त थे और एक धर्मिष्ट हिन्दूकी तरह निष्ठाके साथ जीवन विताते थे। गणेश, सरस्वती, कार्तिक, आदि सब देवताओंकी मूर्तिपूजा करते थे। अकस्मात् उनके जीवनमें परिवर्तन हुआ वह जीव मात्रकी सेवा करनेमें लगे। भगी गांवमें सबके साथ मिलते और रोगी भगी बच्चोकी अपने पुत्रके समान देखते थे। कटकमें मुसलमान लोगोके साथ मिलते थे और इसके बाद आर्य समाजमे हवन आदि करते थे ईसाइयो से भी परिचित थे। इसप्रकार वह यौवनकी ओर एक समुदार दृष्टि लेकर वढे थे।

बहुत क्या कहें? लक्ष्मीनारायण बाबू एक कवि, एक साहित्यकार और एक समाज सेवक हैं। अपने जीवनमें उन्होने साठ अमूल्य ग्रंथोकी रचना की है, जो अग्रेजी, उड़िया और बगला भाषाओ में है। हिन्दीमें उनकी यह पहली पुस्तक है, जिसे वह अपने मित्रोंके सहयोग से अनूदित कर सके है। किंतु साहित्यकार होनेके साथ ही उनका हृदय दया और अनुकम्पा से परिप्लावित है। यही कारण है कि उन्होने कुष्ठ रोगियोकी

भी सेवा करने जैसा जोखमभरा काम करने में आनन्द अनुभव किया है। जब जब दुर्भिक्ष पड़े और बाढ़े आई तब तब आसाम, वंग, विहार, ओड़िसा, हिमालय आदि स्थानोमें जाकर लोकसेवा के कार्य किये हैं। इस वृद्धावस्थामें उनका सम्मान राष्ट्रने किया है। आप को राष्ट्रपति द्वारा "पद्मश्री" उपाधि प्राप्त हुई है। विद्यापीठ आन्ध्र इतिहास प्रत्नतत्त्व समितिसे "भारततीर्थ" और अ० विश्व जैन मिशनके विद्यापीठसे "इतिहासरत्न" आदि उपाधियां भी उन्होने प्राप्त की हैं। विद्यारसिक ऐसे है कि अंग्रेजी आधुनिक भारतीय साहित्योमें तथा अर्थनीति और इतिहासमें एम०ए०प्राईवेट पास किया है।

वह जीवनकी गहराईमें वहुत तैरे है और महानदियो के तैराक भी रहे हैं। मलानदी, विरूपा, शिवपुर और खिदिरपुर के पास गगानदोमें इस पार से उस पार हुये और पुरी समुद्रमें ७-८ मीलतक अन्दर तैर आये थे। इलाहाबादके निकट गंगा यमुना के संगममें भी तैरे थे। पदयात्रा करनेमें भी वह निपुण हैं। हिमालयमें दैनिक २६ मीलतक चलना और समतल भूमिमें दैनिक ४०—५० मीलतक चलना, ये सब कुछ उन्होने किये हैं।

लक्ष्मीनारायण बाबू लोक परिचित एव प्रख्यात् होने पर भी कभी कभी भोकाको अनुभव करते है। लेकिन अपने सब दुःख को वह कविता और ग्रंथ रचना करके भूल जाते है। यह उनकी विशेषता है। भारतवर्षका पर्यटन भी उन्होने कई दफा किया है और वहुत जगहोके दर्शन किये हैं। अतः उन के प्रेमी बन्धुवर्ग असख्य है। आज उनकी ६८ वर्षकी आयु है, फिर भी उनमें एक युवक को सेवा-लगन और उत्साह है वह शतजोवी होकर कल्याणमूर्ति बनें, यह प्रार्थना है

गणेश चतुर्थी—
आश्विन १, २३६५   —*प्रकाशक उडिया पुस्तक*

विषय-सूची

भ० शान्तिनाथ की पाषाण मूर्ति (कटक के जैन मंदिर में स्थित)

उड़ीसा में जैनधर्म

—डॉ० लक्ष्मी नारायण साहू

१. जैन धर्म का स्वरूप

भारतमें आदिकालीनका चिंताशील व्यक्तियोके भूयोदर्शनसे उत्पन्न ज्ञान-पुञ्ज को वेद कहते हैं। यद्यपि विभिन्न कालमें विभिन्न विषयोका ज्ञान ऋषियोको उपलब्ध हुआ, परतु फिर भी उसका संग्रह मन्त्र और सूक्तके रूपमें अत्यन्त मूल्यमय सचयन ही कहा जायगा। परवर्त्तीकालमे उस अपूर्वज्ञानका विभक्तीकरण विषयो के भेद से किया गया। ऋषियो ने उसके द्वारा परि-दृश्यमान जगत्‌की रचना और आश्चर्यकारी स्थितिके मूल-तत्त्वो का निरूपण करते हुए विभिन्न मतोका प्रचार किया। ऋग्‌,वेद (म०५-सू०१०) मे केशी तथा दिगंबरका जो वर्णन है वह जैनियों के भ० ऋषभ और हिंदुओके शिवजी को अभिन्न सिद्ध करता है। इससे "वेदु होइला नाना गति"—इस 'भागवत'- वाक्यकी सार्थकता निस्सदेह प्रतिपन्न होती है। इसके अतिरिक्त "जैन हरिवश" ग्रन्थमें नारद और पर्वत–दोनो ऋषियो मे वेदार्थ को लेकर जो विवाद हुआ, उसका वर्णन भी इस उक्ति की सार्थकताका पोषक है। नारद और पर्वत के आख्यान का साराश इस प्रकार है।

एक वार "अजैर्यजेत्" इस वैदिक-वाक्यके अर्थके बारेमे आलोचना हो रही थी। पर्वत ने इस वाक्य का अर्थ बताते हुये "अज" शब्द को चतुष्पद पशु विशेष के अर्थ मे प्रतिपादित किया जिस से पशु यज्ञ का विधान हो, परंतु नारद ने उस अर्थ को स्वीकार न कर दूसरा अर्थ बताया कि "अज" शब्दसे

भाव तीन वर्ष पुराने शस्य (धान) से है जो उपज न सके। उसके चावलो द्वारा यज्ञ करना चाहिये। किन्तु इतने मे ही यह आलोचना समाप्त न हुई। तीसरे व्यक्ति के द्वारा उसका समाधान कराने के लिये वे दोनो एक राजाके पास गये। उन की सभा में अनेक युक्ति एवं तर्क विवेचना के बाद नारद का मत यथार्थ रूपमे गृहीत हुआ। इसप्रकार पर्वतने पराजित होने पर दूसरे राजाके सहारेसे पशु हिंसा द्वारा यज्ञ करनेके नये मत का प्रचार किया। नारद अहिंसा के प्रचार में लगे रहे। इस तरह हिंसा और अहिंसा के रूप के भेद से एक वेद की दो शाखायें बनी। आपस में यह दो शाखायें प्रशाखाओ और पल्लवो के सम्भार से परिवर्द्धित होकर पुरातन वट वृक्ष के प्ररोह की तरह स्वतन्त्र वृक्ष के रूप में परिणत होकर ब्राह्मण और जैन के नामसे अभिहित हुई। क्रमशः उभय गोष्टी की उपासना और आचार की प्रणाली भिन्न होने लगी और दोनो एक ही वृक्षके दो प्ररोह थे—यह बात स्मृति के बाहर चली गयी। यद्यपि जैनभी इस बातको मानते है कि भ० ऋषभदेवजीके ज्ञानसे आर्य वेद रचे गये थे और नारद-पर्वत सवाद के समय तक भ० ऋषभ देवका अहिंसाधर्म प्रचलित था। अतएव विचारसे यह प्रतीत होता है कि मूलमें ब्राह्मण और जैन-दोनो धर्म एक परिवार के हैं। जैनधर्म बौद्धधर्म से अधिक प्राचीन है। बौद्धोंके धर्मग्रन्थोमें लिखा हुआ है कि भ०ज्ञातपुत्र महावीरके शिष्यो ने अनेक बार भ० बुद्धके साथ शास्त्रार्थ किया था। बुद्ध ने स्वय ही अनेक क्षेत्रों में निर्ग्रन्थ तथा आजीवको के मत का विरोध किया था। भ० महावीरके सन्यासी होनेके पहले सेही जैनधर्म प्रचलित था।[1] पहले अनेका की धारणा ऐसी थी कि बौद्ध

---

(1) Sacred Book of the East (Jain Sutras(by Dr. Jacobi. Introduction,

धर्म से जैनधर्म की उत्पत्ति हुई है, परन्तु यह बात भ्रमात्मक है। जैनधर्म बौद्धधर्मसे अति प्राचीन है,इसमें सदेहके लिए स्थान नहीं है। भ० महावीर जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर हैं। वह बुद्ध के समसामयिक थे। बुद्ध की तरह उनका जन्म राजवंशमें हुआ था। निहत्थे एक मस्त हाथी को दमन करने तथा उपरान्त महा कठिन तपस्या करने के कारण उनको 'महावीर' जैसे गौरवमय उपनाम से पुकारा गया।

भ०महावीरने उत्कलमें आकर जैनधर्मकाप्रचार किया था। उत्कलमें उनके धर्म का मुख्य केन्द्र कुमारी पर्वत (आजका खण्डगिरि) था। किन्तु उडीसा के महेन्द्र पर्वत मे आदि तीर्थंकर ऋषभ का भी आस्थान था। आजकल महेन्द्र पर्वत मंजुषा में है और राजकीय उडीसा में न हो कर आन्ध्र में गिना जाता है। इन उल्लेखोसे उत्कल(उडीसा)में जैनधर्मकी प्राचीनता का बोध होता है।

म० बुद्ध के समसामयिक होने के कारण कई लोग भ० महावीर को बुद्धवशीय कहते थे। परन्तु ऐसा कहना ठीक नही; क्योकि भ० महावीर ज्ञातृक क्षत्रिय वशके थे। हा, यह कहना अवश्य ही सच है कि उत्कलमें युगपत् हिन्दू, जैन तथा बौद्ध धर्म का प्रचलन था।

भ० महावीर कुण्डग्राम के ज्ञातृक-क्षत्रिय राजा सिद्धार्थके कुलमें जन्मे थे। उनके जन्म लेनेके साथ ही,वल्कि उसके पहले से ही, उनके कुल की और राष्ट्रकी धनएव ऐश्वर्यमें वृद्धि होने के कारण उन का नाम 'वर्धमान' रक्खा गया। और सभी की यह आशा एवं अभिलाषा थी कि राजपुत्र वर्धमान अपने पिता के राज्यकी समृद्धि वढायेंगे; परन्तु वह स्वयं जन्मसे ही जिनेन्द्र भगवानकी तरह साधु वननेकी लगनमें थे। युवावस्थामें राजैश्वर्य को लात मारकर उन्होने अरण्यमें जाकर कठोर तपस्या आरम्भकी

और अंतमें सिद्ध-काम बनकर जिनदेव हुए। उनकी अविद्या दूर हुई और वे सर्वज्ञ बने। उन्होंने दीर्घ काल अर्थात् ४२ वर्षों तक जैनधर्मका प्रचार किया। उत्कलका कुमारी-पर्वत उनका प्रधान संघपीठ था और वहींसे जैनधर्मके अगणित कल्याणकारी तरंग अगणित दिशाओंमे फैले थे। इसके बहुत वर्षोंबाद सम्राट अशोक कलिंग विजय में घोर नरसंहार देखकर अनुपात से दग्ध हृदय हुये। और फिर बौद्धधर्म को ग्रहण करके उसके प्रचार में लगे थे। 'देवाना प्रियदर्शी" के उप-नाम से वह प्रसिद्ध हुए थे। फलत: बौद्धधर्मका प्रचार विभिन्न दिशाओं में व्याप्त हुआ। किन्तु यह सबकुछ होने पर भी उत्कल में जैन धर्म अपना सिर उठाये रखकर अपनी रक्षा करता रहा। काल-चक्र के आवर्तन से उत्कल फिर स्वाधीन हुआ और ईसा से पहले पहली शतीमे यहा खारवेल राजा हुए। भारतके विभिन्न स्थानो की दिग्विजय करके जैनधर्मको कल्याणकारी तरंगको उन्होंने अधिक व्यापक कर दिया।

भ० महावीर से २५० साल पहले भ० पार्श्वनाथ ने जिस धर्म का प्रचार किया था उस धर्मको श्वेताम्बर लोग चातुर्याम कहते हैं, क्यो कि उस में चार व्रत थे। यथा:—अहिंसा, अचौर्य्य, अनृत और अपरिग्रह। इस चातुर्याम धर्म का संस्कार कर के भ०महावीर ने उसको पंचयाममें परिणत किया। उन का ५ वा व्रत है आत्म संयममय ब्रह्मचर्य। इसके ऊपर उन्होंने विशेष जोर दिया था (२) दिगम्बर जैन शास्त्रों में ऐसा उल्लेख तो नही मिलता परतु उन में भी भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर के आचार धर्म में कालभेद से अन्तर बताया है। भ० पार्श्वनाथ के संघ में सामायिक चरित्र प्रचलित था और भ० महावीर के संघमें छेदो-पस्थापना चारित्र का प्राबल्य था।

(2) Indian Antiquary Vol. ix. pp.160-61

मौर्योंके कालसे जैनधर्ममें मतभेदका बीज पड़ा था, जिससे ईस्वी पहली शताब्दी मे वह दो भागोमें विभक्त हुआ था। उस समय जैनधर्मके दो प्रसिद्ध आचार्य भद्रबाहु और स्थूलभद्र नामक थे। भद्रबाहुसे दिगम्बर सम्प्रदाय का आरम्भ हुआ और स्थूल-भद्र से श्वेतांबर सम्प्रदायका। हरिषेणकृत "कथा कोष"में लिखा हुआ है कि १२ साल तक दुर्भिक्षि पड़ने की बातको जानकर आचार्य भद्रबाहु ने अपने शिष्योको दक्षिण चले जाने के लिए कहा था और वे स्वय उज्जयिनी जाकर वहा अनशन व्रतके द्वारा समाधिस्थ हुए थे।

बौद्धो के "पिटक" ग्रन्थ की तरह जैनियो के "सिद्धान्त" ग्रन्थ भी हैं। वह हैं "अङ्ग और पूर्व" भद्रबाहुने, इन सब सिद्धांत ग्रन्थो का परिशीलन किया था। श्वेताम्बर मानते हैं कि इस समय ई० पू० ४सदीमें अङ्ग ग्रन्थोका सकलन हुआ था। उस से पहले गुरुमुखसे जैनधर्मका प्रचार होता आरहा था। उपरान्त ५५४ई०में वल्लभीमे श्वेताम्बरजैनियोकी एक महासभा आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण के नेतृत्वमे बैठी। उस सभामें जैनधर्मके उन ग्रन्थोका संकलन किया गया जो आज श्वेताम्बरीय आगम साहित्य है।(३)अत देवर्द्धिगणिको श्वे०जैनियोका बुद्धघोष कहा जासकता है। जैनियो सारी बातें इन ग्रन्थोमें लिपिबद्धकी गयी है।

जैनधर्मके अनेक ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं, जिनको 'पूर्व'' कहते थे। फिर भी जैनियोके अनेक ग्रन्थ हैं।

दिगम्बर जैनियोका साहित्य भी अति उच्च कोटीका है। लेकिन वह प्राय अप्रकाशित ही है। उनके मतानुसार अङ्ग-पूर्व ग्रन्थ मुनिवरो की स्मृति क्षीण होने से लुप्त हो गये। उनका कुछ अश जो श्री-धरसेनाचार्यको याद था वह उन्होने पहली शतीमें गिरिनगर मे लिपि बद्ध करा दिया था। वह सिद्धात

(३) शाह 'उत्तर भारत मा जैनधर्म' (बम्बई)

ग्रन्थ प्रकाशित भी हो रहे हैं।

इन सब धर्म ग्रन्थोंके अतिरिक्त जैनियोंके विभिन्न पुराण और इतिहास भी हैं। वे सब से निराले हैं। इनके अतिरिक्त जैन व्याकरण, भाषाकोश, अलकार, और आयुर्वेदादि के ग्रन्थ भी हैं। शायद अमरकोष भी एक जैन ग्रन्थ है।

यद्यपि उत्तर भारतमें ही जैनधर्मका जन्म हुआ, परन्तु फिर भी दक्षिण भारत में उसका विशेष प्रचार हुआ। जैन प्रचारकों ने मदुरा और त्रिचनापल्ली आदि स्थानों मे जाकर जैनधर्मका प्रचार किया था। और साथ साथ तामिल साहित्य की भी श्री वृद्धिकी थी। आजकल जो तामिल व्याकरण "थोल्कपिययम्" प्रचलित है वह एक जैनग्रन्थ ही है। कन्नड़ साहित्यके सम्बन्धमें भी यही बात है। वास्तवमें जैनलोग उस समय अत्यन्तप्रसिद्ध थे।

जैनधर्म मूल से अन्त तक निवृत्ति मार्गका द्योतक है। इसीलिये उसमे भक्तिको भावधारा नही दिखाई पडती। जबसे देशमे महादेव के स्तोत्र और गीतादि का प्रचलन शुरू हुआ तब से जैनधर्मका क्रमश ह्रास होने लगा। अकस्मात् नूतन, सरस तथा सहज भक्तिके स्रोतके उमड आने से कठोर, वैराग्यसे भरा हुआ जैनधर्म प्राय: लुप्त होने लगा और उसके स्थान पर शैव धर्म फैलने लगा। इस विकट परस्थितिमें भी जैनधर्म बहुत लम्बे काल तक प्रभावशाली रूपसे जीवित रहा, किन्तु समयके प्रभाव से वह धीरे२ सभी दिशाओंसे हटकर अब मुख्यत.राजस्थान और गुजरात मे जिन्दा है। वैसे आज भी जैनी सारे भारतमें थोड़े बहुत फैले हुए मिलते है। और कुछ विदेशो में भी पहुंच गये है।

जैनधर्मका मूल तत्त्व यह है कि संसार एक प्राकृतिक प्रवाह है। लोकको किसी ने बनाया नहीं। जब आत्मा या जीव इस सत्यको समझता है तब वह अविद्याको जीतकर के बोधि अर्थात् आत्म ज्ञानका अधिकारी होता है। लोकमें जीव और पुद्गल

दोनों अनादिसे परस्पर आधारित हैं। पुद्गल (Matter) में भी पर्याय या परिवर्तन होते हैं। जैन कुल छै द्रव्य या वस्तु मानते हैं, जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल है।

जैनधर्मका स्याद्वाद न्याय एक चमत्कार पूर्ण तथ्य है। वास्तवमें यही है जैनधर्मका दर्शन। 'स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति, अवक्तव्यं स्यात् अस्ति नास्ति वक्तव्य अर्थात् यह हो सकता है, यह नही हो सकता है, किसी दृष्टि विशेष से है, किसी दृष्टि विशेषसे नही है। स्याद्वादका अर्थ इस तरह बडा विलक्षण और विचित्र है। अनेकान्त उसकी पृष्ठभूमि है। एक ही वस्तु अनेक दृष्टि कोण से देखी जा सकती है। जैसे पिता के सम्बन्धमें मैं पुत्र हूँ, बहन के सम्बध से भाई, भतीजा के सम्बन्धमें चाचा, एक होने पर भी मैं बहु प्रकारसे मान्य हूँ। लेकिन पिता माताके सम्बन्ध में मैं पुत्र होते हुए भी बहन के सबन्धसे पुत्र नही हूँ। अगर दोनोके सम्बन्धसे मेरी वर्णना की जाय तो मैं पुत्र हूँ फिर भी सर्वथा पुत्र नहीं हूँ। एक होते भी एक होना या न होना अनिर्वचनीय है। इसीलिये विश्वके बाहरकी बातो को तथा विचार शैली से बाहर ठहरने वाले संसारकी विविध वस्तुओंको विविध दृष्टिकोण से देखनेके द्वारा हमारी दृष्टि उदार होती है, विभिन्न प्रकार के विरोध हट जाते हैं और प्रेम का प्रसार होता है। यह है जैन न्यायकी विशेषता-यह समन्वय की सरसारिता है।

जैनधर्म में मुख्यतः सात तत्वोंकी मीमांसा मिलती है। ये तत्व निम्न प्रकार हैं —

जीव—चैतन्य गुण सम्पन्न सत्ता।
अजीव— शरीरादि जड पदार्थ।
आस्रव—शुभाशुभादि कर्मों का द्वार।
कर्मबन्ध—आत्मा और कर्मका पारस्परिक संश्लेष।

संवर– शुभाशुभ कर्मोका प्रतिकार।

निर्जरा–सचित कर्मसे स्वतन्त्र होना।

मोक्ष–कर्मका सपूर्ण विनाश व आत्मस्वातंत्र्य ।

जैनियोके अष्टमागलिक द्रव्य भी हैं। उसीसे हमारी अष्टमंगलकी मान्यता है। विवाह के बाद अष्टमंगलों का अनुष्ठान होता है। इसमे ८ प्रकारके वस्तु होते है, यथा - स्वस्तिक, श्रीवत्स,नन्द्या-वर्त्त,वर्धमान या भद्रासन, कलस,मत्स्य और दर्पण। साधारणत. हम मगल के लिये पूर्णकु भ की स्थापना करते है। और उसमे आम की डाल डालते हैं। दही और मछली का आकार भी मगलसूचक है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि जैनधर्मके अष्टमगल द्रव्यो को हमने हिन्दूधर्मके अन्दर घुसालिया है, अष्टमगल द्रव्यो का दूसरा सभी है रूपभी यथा -मृगराज वृक्ष,नाग,कलस,व्यजन,वैजयन्ती, भेरी और दीप। कही कही इसप्रकारके अष्टमगलक मिले हे–ब्राह्मण गौ हुताशन, हिरण्य, घृत, आदित्य, अप और राजा। जैनधर्म में पूजाके प्रसगमे अष्ट प्रातिहार्योका प्रचलन है। यथा -अशोक वृक्ष, सुर- पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, आसन, भामडल दुदुभि और आतपत्र।

बोद्धोकी तरह जैनियोका भी त्रिरत्नमें विश्वास है। ये त्रिरत्न जैनधर्मके सारे तत्त्वों का समाहार है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष प्राप्तिके लिये ये तीन चीज एक अवलबन है। (४) जैनधर्म में स्वस्तिक चिन्ह की एक विशेष आवश्यक मान्यता हैं। नीचे स्वस्तिकका एक चित्र दिया गयाहै।

मनुष्य — देवता
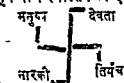
नारकी — तिर्यंच

(४) तत्वार्थसूत्र Ch. i. V. i.

यह है जैनियोंका जीव विभागका संकेत मय प्रतीक। जैनमतके अनुसार जीव ४ श्रेणी मे विभक्त है। यथा-नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता। जिनकी आसुरी वृत्ति है और नरकोमेवास करते हैं वे नारकी हैं, पशु पक्षी या कीट-पतगादि के रूपमें जन्म लिया वे है तिर्यंच,नर देही जीव है,औरजो सूक्ष्म शरीरी वे है देवता। जैनियो की कल्पना और दृष्टिसे जीव, स्वर्ग, मर्त्य पाताल सर्वत्र व्याप्त है। जैनियोकी सर्वभूत दयाका यही तात्पर्य है। स्वस्तिक इसीका प्रतीक है।

यह स्वस्तिक जैनधर्म ग्रन्थो और मंदिरोमें अधिक दिखाई पड़ता है। जैनियोकी अक्षत पूजामें यह चिन्ह आज भी दिखाई पड़ता है। स्वस्तिकके ऊपर तीन विन्दु त्रिरत्न "सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग."का सकेत करते है। त्रिरत्नके ऊपर अर्धमात्रा है और उसके ऊपर चन्द्रविन्दु का चिन्ह है। इसमें जीवका मोक्ष या निर्वाणकी कल्पना स्फूर्त हुई है। इसमें तनिक भी सदेह नही कि स्वस्तिक जैनियोका आदि चिन्ह हैं।

जैन लोग देव पर्यायके जीवो को चार भागो मे विभक्त करते हैं। यथाः-१ भवनपति,२ व्यन्तर, ३ ज्योतिष,४ वैमानिक। वे पाताल, मर्त्य, अन्तरीक्ष और स्वर्ग के अधिपति है। खण्ड-गिरिमें आज भी एक पाताल को और एक मर्त्य की गुफा विद्यमान हैं। ६

जैन तीर्थंकरो की कीर्त्ति अतुलनीय है। तीर्थंकर वे है जो ससाररूपी घाटके पार पहुंचातेहै अर्थात् जीवनकी नौका चलाने के लिये ठीक मार्ग बताते है। सब तीर्थंकर क्षत्रिय थे-पन्रतु वे सन्यासी बनकर जगत्का श्रेष्ट आदर्श मार्ग दिखाते थे। ऋषभ,

---

(५) 'नव भारत' जुलाई १९५० से सगृहीत

(6) The Heart of Jainism by Mrs. Sinclair Stevenson, P. 105.

नेमि, पार्श्वनाथ, महावीर कोई किसीसे कम नहीं थे। २४ तीर्थंकरों को मिलाकर जैन लोग कुल ६३ शलाका पुरुषों को स्वीकार करते हैं। वे हैं—

२४ तीर्थंकर
१२ चक्रवर्ती
९ बलदेव
९ नारायण (वासुदेव)
९ प्रति नारायण (प्रति वासुदेव)

ये ६३ शलाकापुरुष हैं, जिनका विशद विवरण निम्नप्रकार है

२४ तीर्थंकर—ऋषभ, अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांश, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथनाथ, अरनाथ, मल्ली, मुनि सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ, महावीर।

१२ चक्रवर्ती—

भरत, सगर, मघवान्, सनतकुमार, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, सुभौम, पद्मनाम, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त।

९ बलदेव—अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, रामचन्द्र, पद्म।

९ नारायण या वासुदेव—

त्रिपृष्ट, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुण्डरीक, दत्तदेव लक्ष्मण, कृष्ण।

९ प्रतिनारायण या प्रतिवासुदेव—

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधु, निशुंभ, बालि, प्रहलाद रावण, जरासघ

जैनधर्ममें वीरत्वकी गाथा निराले ढगसे की गई है। उस मे त्याग की कथा या अपने को जीतनेकी कथा है। सच्चा जैन वह है जिसने अपने को जीता है यानी सारी वासनाओं और प्रवृत्तियों को अपने वशमें कर रक्खा है। जिसने निजको जीत

लिया" उसने सारे जगत् को भी जीत लिया।" जैनधर्मकी सब से बड़ी विशेषता है अपनेको जीतना अर्थात् सपूर्णतया अपने को स्वाधीन रखना जिससे कि जगत् का मगल हो सके और किसीकी क्षति न हो।

यह मनोभाव धर्मका लक्षण है। जैनधर्मका तो सिर्फ इतना ही कहना है कि मनुष्यका भाग्य उसके अपने हाथमें रहता है। कर्मके अनुसार फल मिलता है। इसलिये कर्मका प्राधान्य माना जाता है। कर्म बन्धन और मोक्ष दोनोंका ही कारण है। सोच समझ कर काम करने से हम मुक्त पुरुषो की भाति काम कर सकेंगे। मुक्त पुरुष ही जैनधर्मका लक्ष्य है। इसलिये जैन और किसीका आश्रय लेना नही चाहता है। "मेरे मोक्ष और बधन मेरे हाथमें है। अतएव अन्य किसीका आश्रय मत ढूंढो। किसी देव देवी, ईश्वर या बाहर की किसी शक्तिके ऊपर मत निर्भर रहो'-यह जैनधर्मका सदेश है।

जैनधर्मका यह आत्मावलंबन बौद्धधर्ममें भी दिखाई पड़ता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। इसलिये सोच-विचार कर काम करो। क्रिया या कर्मसे मुक्त होने का एक ही उपाय है अपने को फलाकांक्षा से दूर रखना। फलाकांक्षा से तृष्णा उपजती है और तृष्णासे बधन। बौद्धधर्ममें तृष्णाकी बात कही गयी है। जैनधर्म शुरूसे एक सत्य बात को मानता है और सब को काट देता है। वह कहता है, कि मानव विश्वास करे कि "मैं एक ही तत्त्व हूँ। मेरे द्वारा मेरी मुक्ति होगी, अन्य किसीके द्वारा नही। और कोई शक्ति नही है, और किसीमें मुक्तिभी नही है। अतएव अन्य किसीका अवलवन करना व्यर्थ है। मैं हूँ-मेरा अवलंबन, मैं हूँ मेरा बंधन। और मैं स्वयं हूँ।" जैनधर्म इस बातके ऊपर विशेष जोर देता है यह भाव हिन्दूओ के 'भागवत' मे भी दिखाई पड़ता है। यह भाव हमारे पुराणोमें भी समुद्-

भासित है। इस निष्कर्ष को भूल कर हम विभिन्न देव देवियों की आराधना में मग्न रहते हैं- बाहर की शक्ति की पूजा करते हैं। आश्चर्य है, व्यक्ति मुक्ति को बाहर ढूंढ रहा है!

मानव तथा अन्य जीवोंके साथ ऐक्य और सखाभाव स्थापन करना जैनधर्मका प्रबलतम उपदेश है। इसीलिये जैनियोंने अहिंसा की नीति को अत्यन्त निगूढ भावसे ग्रहण किया है। वे लोग रात में भोजन इसलिये नहीं करते कि रातमें दीप जलाने पर उसमें कीट पतग गिरकर मर जाते हैं। यहाँ तक कि पानी को छानकर पीते हैं और उसका परमित उपयोग करते हैं जिस से कि जलकाय के छोटे छोटे जीवाणुओं का नाश न हो।

पृथ्वी के इतर धर्मोंकी भांति जैनधर्म में हिंसक-युद्धों का घनघोर या पशुबलपरक वीरत्वका परिप्रकाश दिखाई नहीं देता। जैनधर्ममें शान्ति,सौहार्द, प्रीति,संयम, अहिंसा, और मधुर मैत्री आदि विशेषतायें विद्यमान हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक,दार्शनिक और व्यावहारिक विचारसे जैनधर्म ने मानव जीवन को सुन्दर करनेका विधान किया है। किसी भी जीवकी हिंसा न करना और उस साधन से मोक्ष का लाभ करना जैनधर्मकी सबसे बड़ी विशेषता है। बौद्धधर्मके निर्वाण में अन्त में शरीर का ध्वस करना पड़ता है, लेकिन मोक्षके लिये अपनेको ध्वंस करनेकी बात जैनधर्म में नहीं है। उसमें अपने को जीतकर जगत् की - सेवामें लगनेकी बात है। यही है सच्चा मोक्ष! बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसा धर्ममत भी ससार में समर्द्धित और व्याप्त न हो सका। मेरे विचारसे इसका कारण यह हो सकता है कि मानव के हृदय में शान्ति की स्पृहासे युद्ध की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में बैठती है। उस प्रवृत्ति का समूल विनाश करना जैन 'धर्मकी प्रधान चेष्टा है। इसलिये धर्म प्रचारकोंके द्वारा पृथ्वी के विभिन्न प्रान्तों में धर्मके-लिये युद्ध सृष्टि की चेष्टा जैनधर्म

ने नही की है। फिर भी प्रश्न उठता है कि बौद्धधर्मने तो धर्मके नामसे युद्ध नही किया है, फिर वह कैसे भारतके बाहर चीन जापान आदि सुदूर देशो मे प्रचरित हो सका ? मैं सोचता हूँ कि जैनधर्मकी नीरस कठोरता और निष्ठाने उसको जनसाधारण में लोकप्रिय नही कर पाया। बौद्धधर्म अपने मध्यम पन्थ (के कारण) यानी नातिकठोर और नाति विलासपूर्ण जीवन यात्रा के कारण अधिक लोकादरणीय हो सका था। जैनधर्म में तीर्थंकरो के सुकठोर आदर्श ने लोगो को विमुग्ध किया सही लेकिन उससे लोग सदा के लियें अनुप्राणित हो नही सके। *

जैनलोग भारत के बाहर अन्य किसी देश में परिदृष्ट न होते हुए भी भारतके काठिआवाड,राजस्थान और उत्कल आदि प्रान्तो में आजतक दिखाई देते हैं। उडीसा के अनेक प्रान्तो में यथा पुरीकी प्राची नदीकी अववाहिका तथा आठगड,में तिगिरिआ नूआपाटण आदि स्थानोमे भी जैन बसबास करते हैं। सिंहभूम में सराक के नामसे एक जातिके लोग रहते हैं। महा महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने इन लोगो को बौद्ध कहा है लेकिन मेरा दृढ मत है कि वे जैन हैं। [८]

मयूरभज और केन्दुझर जिला के जिस जिस स्थानमें जैन धर्मके प्राचीन अवशेष और निदर्शन मिले हैं वहा सराकपोखरियाँ मौजूद हैं। इन सब पोखरियोको सराक जातिके लोगो ने खुद वाया था। सराक लोग शाकाहारी होते हैं। उनकी आचार

---

* जैनाचार भी सभी वर्गके लोगोके लिये उपयुक्त है और एक समय वह भारतेतर देशो मे व्याप्त था, किन्तु संगठन के अभाव में विदेशोंमें बौद्ध धर्म ने उसका स्थान ले लिया। अफ्रीका सिंगापुर आदि देशो में आज भी जैनी हैं। — का० प्र०

(8) H .P. Sastri's Introducton to Neo-Budhism in Orissa by N.N Basu.

पद्धति हिंदूधर्मसे प्रभावित होने पर भी उसके ऊपर जैनियोंका काफी प्रभाव पडा है। शायद इसीलिये हरप्रसाद शास्त्रीने इन को बौद्ध कहा था। लेकिन शास्त्री जी से बहुत पहले पण्डित डाल्टन ने इनको जैन कहा है[१]

---

(१) Chubanghen by Dalton J. B O.R.S vol.XII Part III में S. N. Roy का Saraks of Mayurabhanja देखिये।

२. जैन धर्म की ऐतिहासिक भूमिका

आज भारतका जो हिस्सा 'उत्कल' के नामसे प्रख्यात् है, उसमे डेढकरोडकी आवादी के भीतर जैनियो की सख्या डेढसौ भी नही दिखती है, किन्तु एक दिन ऐसा भी था जबकि जैनधर्म उत्कलका राष्ट्रीय धर्म बना हुआ था । सम्राट् खारवेल के राजत्वकालमे उसी उत्कलमे खण्डगिरिकी गुफाओमे खोदित शिलालिपिया इस बातकी गवाही देने के लिये काफी है । अस्तु, तबतक जैनधर्म सम्बन्धी आलोचना अपूर्ण रहेगी, जबतक कि उस धर्मके अभ्युदय, प्रसार, प्राधान्य, देशीय परम्परा, संस्कृति, भूगोल, इतिहास, भाषा, साहित्य आदि विषयोका पूरापूरा अनुशीलन न हुआ हो और उस अनुशीलनके फलस्वरूप उसका वास्तविकरूप सबके सामने प्रकट न हुआ हो । अत. उत्कलमे जैनधर्मका पर्ययलोचन करने के लिये सबसे पहले भौगोलिक विचार होना जरूरी है ।

कलिग एक बहुत पुराना देश है । पुराणो तथा धर्मशास्त्रो में इसके प्रमाण अगणित है[1] । मिश्री, युनानी तथा चीनी पर्य्यटको के भ्रमणवृत्तान्तोमे भी उत्कल का उल्लेख है[2] ।

विभिन्न छ राष्ट्रोके सम्मिश्रणसे इस प्राचीन भूखण्डका निर्माण हुआ है और ये है–ओड्रराष्ट्र, कलिग, कंगोद, उत्कल,

---

१– कूर्म पुराण, अ० ४१, मत्स्य० अ० १०; वायु० अ० ३३; ब्रह्माण्ड० अ० १४; वाराह० अ० ७४; विष्णु० अ० १८; स्कन्द० अ० १६ ।

2– Pliny, Ptolemy, Geography, Yuan Chwang etc

दक्षिण कोशल और गगराढी। ये छ राष्ट्र कभी एक चक्रवर्तीके अधीन रहते थे तो कभी स्वाधीन हो जाते थे। उस जमानेकी परिस्थिति और राजकीयविकासका यह हाल था। मगर अचरज की बात यह है कि इन राष्ट्रोकी संस्कृति और सभ्यता एक थी और एक ही मार्गसे और एक ही क्रमके अनुसार इनका विकास होता रहता था।

वस्तुत गगासे लेकर गोदावरी तक और पूर्वी समुद्रसे लेकर दण्डकारण्य तक उत्कल विस्तृत था[१], कालक्रमसे दक्षिणकोशल का कुछ अश उससे अलग हो गया और शेषका नाम त्रिकलिंग पड गया। इस नामको लेकर प्लीनी मैगास्तिनिस आदि विदेशी पर्यटकोने अपने अपने भ्रमणवृत्तान्तोमे उत्तर कलिंग, मध्य कलिंग और दक्षिण कलिंगका नामोल्लेख किया है।

'उत्कलमें जैनधर्म'- कहनेका अर्थ व्यापक होना चाहिये। देशके आचार-विचार, संस्कृति, धर्मग्रन्थ, काव्यपुराणादि साहित्यिक ग्रन्थ,शिल्प, स्थापत्य आदि बातो पर किसी भी धर्मके प्रभावका विचार अवश्य होना चाहिये। यह युक्ति सिर्फ उत्कल के लिये नही, वल्कि किसी भी राज्य या प्रदेश के लिये लागू है। किन्तु उससे पहले उस धर्मके सस्थापक प्रचारक और धर्म की नीतिके बारेमे विचार करना भी आवश्यक है। किसी भी धर्मकी प्रतिष्ठा, प्रचार, परिवृद्धि, प्रकाश और पराकाष्ठा उस धर्मकी महत्ता, उसके प्रचारकोके साधुस्वभाव, विशिष्ट निर्मल जीवन तथा उच्च आदर्श प्रसगके क्रममे अपने आप सामने आ जाते हैं। इस बात को सामने रखकर जैनधर्मकी गवेषणा या अनुशीलन करते चलेंगे तो हमें ईसाके पहले आठवी सदी तक या और पीछे जाना होगा। भारतके इतिहासके बारेमे हमें ईसा के जन्मसे पहले सातवी सदी तकका पूरापूरा विवरण ठीक रूप

१- कूर्मपुराण

से मिल जाता है ।

ईसाके जन्मके पहले सातवी सदीसे और आगे जानेके लिये पुराणोका आश्रय निहायत जरूरी है। पुराणोमें वर्णित घटनाओ की कुछ रद्दोवदलके होते हुए भी समस्त विवरणोका एक अनोखा सादृश्य रहा है। उनकी सहायतासे यद्यपि इतिहासकी क्रमिक-धाराका निर्णय करना कठिन है, फिर भी मुख्य घटनाओका क्रम जाना जा सकता है। इस तरह भारतके इतिहास का सुदूर अतीत जब हमारे विचार्य विषयके रूपमें आता है और हम इसमे आगे बढ़कर चलते हैं तो कुरुक्षेत्र युद्धका समय हमारे सामने एक निशान बन जाता है। विद्वानोका निर्णय है कि यह युद्ध ईसा के जन्मके पहले चौदहवी सदीमें हुआ था[५]।

जैनधर्मकी परम्पराके अनुसार तीर्थंकर पार्श्वनाथके २५० साल बाद म०महावीर का आविर्भाव हुआ था। ये दोनों महापुरुष जैनधर्मके अन्तिम तीर्थंकर थे और अधिक शक्तिशाली प्रचारक भी जैनधर्मके कुल तीर्थंकरो की सख्या चौबीस है। इससे सिद्ध होता है कि पार्श्वनाथसे पहले और भी बाईस तीर्थंकर हो गये हैं। इनमे से प्रथम तीर्थंकरका नाम ऋषभदेव था, जिन्हें आदिनाथ भी कहते हैं। बाईसवें तीर्थंकर का नाम था नेमिनाथ या अरिष्टनेमि जो वृष्णिवशीय थे और श्री कृष्णजी के चचेरे

४– Political History of India–Dr. H C, Raychoudhury बौद्धग्रन्थ 'आर्य मञ्जु श्री' मूलकल्प ई० ६८३ में तिब्बतीय भाषा में अनूदित हुआ था। उसमें एक अध्याय हैं, जिसमे ई० ७७० तकके भारतीय राजवशो का वर्णन है। उसमें जैने साधको की गिनती में कलिंगके ऋषभका नाम लिखा गया है। Dr. K.P. Jayaswal's Imperial History of India.

5–Proceedings of Indian History Congress 1939 Calcutta Session-Dr.A.S. Altekar's Presidential Address-Appendix A.

भाई भी ६ इनसे इन्हें (नेमिनाथको) ईसा जन्मसे पहले चौदहवीं सदीके कह सकते हैं। यह निर्णय पुराणोके सहारे कियाजाता है।

पुराण वर्णित महाभारतके युद्ध से लेकर चन्द्रगुप्त साम्राज्य तक का काल एक क्रमके साथ निर्णित हैं। दस बारह साल के हेर फेर के होते हुए भी उस जमाने के दूसरे विवरणात्मक इतिहास के द्वारा समर्थित है। जो हेर-फेर दिखाई देता है वह केवल चान्द्रमान और सौरमान के कारण ही, इससे सिद्ध होता है कि अलग अलग धर्म-प्रचारकों के जीवनकाल का फर्क २५० से ५०० सालके भीतर ही है। ऐसा होना स्वाभाविक है। किसी नवप्रवर्त्तित धर्मकी दीक्षा कुछ कालके बाद अपनी निर्मल ज्योति खोकर मलिन हो जाती है। यह इतिहास की चिरन्तन रीति है। इस मलिनता को दूर करके नवीन धर्मका प्रवर्त्तन या संस्कार के लिये लोकगुरुग्रो का आविर्भाव हुआ करता है। इस दृष्टिकोण से विचार करनेसे मालूम होता है कि अरिष्ट-नेमि से पहले जो २१ तीर्थङ्कर हो गये हैं उनके समय के अन्तर की गिनती करने पर आदिनाथ का समय करीब ईसा से पहले ३००० साल का हो जाता है*। मिश्री, वाबिलनीय और सुमेरीय आदि प्राचीन सभ्यता के काल के हिसाबमे तथा महेन्-जोदाड़ो, हरप्पा और नर्मदा की उपत्यका में पुरातत्वा-त्विक गवेषण से जिस कालका निर्णय हुआ है, उससे इस काल

६– ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमित्तिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ, पुष्पदन्तनाथ, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरनाथ, मल्लीनाथ मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ पार्श्वनाथ, महावीर।

* जैन मान्यताके अनुसार ऋषभदेव भोगभूमिके अन्त और कर्मभूमिकी आदिमें हुए, जिससे अनुमान होता है कि ऋषभदेव पाषाण युगके बाद कृषियुग में हुए थे। अ० नेमिका समय भी प्राचीन है। –का० प्र०

का पता आसानी से मिल जाता है।[७]

वेदो की ऋचाओ मे आदिनाथ ऋषभदेव का नाम प्राप्त होता है। यद्यपि कोई कोई इसे प्रक्षिप्त बताते हैं। तो भी यह स्पष्ट है कि बाद को जब द्वैपायन व्यास ने वेदोका सकलन किया तब उन्होने वेदो में इस बातको जोड दिया होगा। व्यास कुरुक्षेत्र युद्ध के समय यानी ईसा से पहले चौदहवी सदी में थे, इससे सिद्ध होता है कि व्यास जब वेदो का सकलन करने लगे थे तब तक ऋषभ देव भगवान के रूपमें स्वीकृत या गृहीत हो चुके थे यह मान लेना पड़ेगा। इसके बारेमें लोकमान्य तिलकभी गीता रहस्यकी आलोचना और अनुशीलन प्रणिधान-योग्य है।

जैनी धर्मग्रन्थोमें आदिनाथ ऋषभदेव के बारेमे कुछ ऐसे विषय हैं जिनमें एक देशदर्शिता है[१०]। उन्होने ऊखका आविष्कार किया था और लोगोको पशुपालन और खेतीकी शिक्षा दी थी-आदि विषयोका उल्लेख है, हा, उस समय 'भारतवर्ष' ऐसा नाम नही हुआ था, क्योकि तबतक भरत राजा नही बने थे ऋषभके पुत्र भरतके नामसे देशका नाम 'भारत' हुआ। लेकिन उनसे पहले इक्ष्वाकुवशी राजा (ऊखके आविष्कारक वशके) हो गये थे और देशमें खेतीका नाम चलाता था।

लोग यज्ञ भी करते थे, स्वयं ऋषभदेव पुत्रेष्टियज्ञ के

7- Prehistorio India-Stuart Piggott PP.132-213.

८- ऋग्वेद मे दिगम्बर साधुओ की चर्चा है। ऋग्वेद- ५वाँ मण्डल ऋ० १०` ११६ इसमे दिग्मावर साधुओ के नेता केशीकी प्रशसा है। इस केशीकी वर्णना भागवत के ऋषभदेव की वर्णनासे करीब करीब मिलती है।

९- गीतारहस्य- बालगगाधर तिलक कृत (भूमिका देखिये।)

१०- भद्रबाहु-रचित कल्पसूत्र में ऋषभदेवकी वैषयिक शिक्षाओ का उल्लेख है। पहले लोग कल्पवृक्ष से खाना पाते थे। Wilson's विष्णुपुराण Page-103. Jacobi in I. Antiquary IX-Page-103. Mahavira and his Predecessors.

फलस्वरूप पैदा हुए थे। ऋषभदेव खूब प्रजाप्रिय थे और शास्त्र के विधानोंको मानकर राज-काज चलाते थे। बुढ़ापे में उन्होंने वानप्रस्थाश्रम अपनाया था। उनकी कई रानियां थी।

एक दिन नीलञ्जना नामकी एक नर्तकी के नाच-गान के निमित से भ० ऋषभ संसारसे मुंह मोड़कर महलोंके बाहर चले गये और बहुकालके बाद तपस्यामें सिद्धिलाभ करके अपने अहिंसा पूर्ण धर्मका प्रचार करने लगे। उनके प्रथम नौ पुत्रों ने राजत्वके बाद यतिव्रत अपनाया था और दूसरे पुत्र भी ऋषि हो गये। अहिंसा की दीक्षा लेकर ऋषभदेव 'यज्ञोंमें पशुबलि न करने के लिये योग साधना करने का उपदेश सबको देते थे'।

बाद के तीर्थंकरोंने प्राणिहिंसा न करने के लिये जिन नियम को स्वीकार किया उनका पालन होता रहा किन्तु जब यहाँ पर असुरोंका प्रकोप हुआ तो अहिंसा प्रधान गार्हस्थाश्रम चलाना नामुमकिन हो गया। धर्मके कड़े कानून और शुष्क नीतियां लोगों को अनुप्राणित न कर सकीं। इसीलिए ऐसे एक शुष्क ज्ञानमार्ग और निवृत्तिपर धर्मके प्रवृत्ति पर समाजमें बारबार मार्जन और नये नये संस्कारों के होने मे आश्चर्य करने की बातही क्या है? हिन्दुओ के पुराणोंमें भी कितने ही सिद्ध दिगम्बर साधुओंके नाम सम्मानके साथ उल्लिखित पाये जाते हैं। वे जैनी दीक्षाके मूलमंत्र और मूलतत्त्वका ग्रहण करके निर्लोभ हो नगरोंमें घूमते थे। इसतरह २१तीर्थंकरों के अवतारके बाद महाभारत युगके अरिष्टनेमि का नाम हमें मिलता है। उस जमाने में अरिष्टनेमि का लोगोंमें बड़ा आदर था। लगता है कि श्रीकृष्णजी को भगवत्ता का प्रचार तब तक नहीं हो पाया था। अरिष्टनेमि के नामसे जो संस्कृत पुराण प्रकाशित है उसे जैन हरिवंश कहते हैं। हमारे हिन्दू हरिवंशके साथ साधारण सादृश्य रखते हुए भी यह हरिवंश जैनों को

अपनी स्वतंत्र रचना है। इसमें लिखा है कि कृष्ण, वसुदेव, और आखिर कलिंग के राजा जबर्दस्ती प्रभावती को लेने गये। जरासंध या पाडवो के जमानेमे बहुत बडी तादातमें जैन-दीक्षा ग्रहण करने वाले लोग थे। वनवासके भीतर अर्जुनने रामगिरिमें जैनमूर्तिका दर्शन किया था। इसमें विचित्रता नही कि महाभारत कालमें जैनधर्मका प्रचार विशेष हुआ, कारण यह है कि मूलनीति और ब्राह्मण धर्ममें ज्यादा फर्क न था और जैनोके धर्म गुरु हिन्दुओ के अवतार माने जाते थे। अतएव अरिष्टनेमि के द्वारा प्रचारित जैनधर्म आम जनता के लिये एक जाग्रत धर्ममतके रूपमें आदृत था और ई० पू० १४००से लेकर ई० पू० ५०० तक आर्यावर्त में व्यापक हो गया था। 'हरिवंश' तथा 'महाभारत' में रैवतकगिरि वर्णन है और यह पर्वत जैनियोका गिरिनार तीर्थ है।

ई०पू० ८२० में भ० पार्श्वनाथका आविर्भाव हुआ था और ई० पू० ७५० मे तिरोभाव। उनके पिता अश्वसेन वाराणसी के राजा थे और मा वामादेवी अवधके राजा प्रसेनजित की कन्या थी पार्श्वनाथने राजपाट छोडकर वाराणसीके पास तपस्या की और सिद्धिलाभके बाद अपने शुद्ध धर्ममतका प्रचार किया था। बंगालसे गुजरात तक उनका धर्म प्रसारित हो गया था और ज्यादातर निम्न जातिके लोगोने उनके धर्मकी दीक्षा ली थी। उन्होने सम्मेद शिखिर पारसनाथ हिल नामके पहाडसे देहत्याग कर निर्वाण लाभ किया था। यह बहुत सभव है कि उनके जमाने उत्कलमें जैनधर्मका प्रचार और प्रसार हुआ था।

तीर्थंकर पार्श्वनाथके बारेमें श्वेताम्बर जैनोमें मिलने वाली किंवदन्ती इस प्रकार है—राजा सुसेनजित की एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था प्रभावती, वह पार्श्वनाथके गुणोसे मुग्ध

हो कर उनसे शादी करना चाहती थी, लेकिन कलिंगके राजा और दूसरे राजे भी प्रभावती को पाने के लिये लालयित थे फल स्वरूप लडाई छिडी, राजा प्रसेनजित ने लडाई के लिये पार्श्वनाथ की सहायता मागी। आखिर पार्श्वनाथ ने लड़ाईमें कलिंग को हरा कर प्रभावती से शादी की। खण्डगिरि में अनन्तगुफा की पार्श्वनाथ की मूर्त्ति के ऊपर एक साप है, यह उत्कलीय पार्श्वनाथ का एक खास चिन्ह है। महेन्द्र पर्वत की पार्श्वनाथ मूर्त्ति सहस्त्रसर्पो के फनो से आच्छादित है।

श्रमण भगवान महावीरजी ईस्वी पू० ५५७ में अपने जीवन की ४२ साल की उम्र में तीर्थंकर बने थे। ७२ सालकी उम्र में ईस्वी० पू० ५२७ में उन्होने निर्वाण प्राप्त किया था। जृम्भिक नाम के गावमें उन्होने केवल ज्ञान प्राप्त किया था और बारह वर्ष तक गभीर चिन्ता और अन्तर्दृष्टि के साथ जीवन बिताने के बाद उनको ज्ञानलाभ हुआ, तीर्थंकरोमें उनका स्थान सर्वोत्तम है। कल्पसूत्र, उत्तरपुराण, त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र और बर्द्धमान चरित आदि जैनग्रन्थो में उनकी जीवनी का विस्तृत वर्णन है। जैनधर्ममें उनका स्थान अप्रतिहत और अद्वितीय है। २४ तीर्थंकरो में श्रेष्ठ तीर्थंकर के रूपमें उनकी गिनती होती है। इसलिये उनका लाञ्छन 'सिंह' रहा है।

जैनो के २४ तीर्थंकरो में से १४ तीर्थंकरोने मगध, अंग तथा वगमें देहत्यागकर निर्वाणलाभ किया है। एक समय जैन धर्म पश्चिम भारतमें भी व्याप्त था, फिरभी मगध, अग, वग और कलिंग इस धर्मके मुख्य क्षेत्र थे। मगध तथा कलिंग के सम्राज्यका धर्म बन जाने के कारण देशमें इस धर्मका महत्व जितना बढगया था बौद्धधर्मका महत्व उतना नही बढा था।

किसी भी धर्मके सुदूर विस्तारकी प्रतिष्ठा के लिये कमसे कम चार-पाच सदियोकी अपेक्षा है। शाक्यसिंह का वेदविरोधी

और संख्या मत परिपूरक बौद्धधर्म चारसौ सालके बाद एशिया भर मे व्यापक हो पाया। इस रास्ते से आगे बढते जाये तो हमे मान लेना होगा कि भ० महावीरजी के बहुत पहले जैनधर्मका प्रचार हो चुका था-और यही उस धर्म की अति प्राचीनता की प्रवलतम युक्ति है।

जैनधर्मकी प्राचीनता के बारे में ऐसा भी कहा जाता है कि दक्षिण भारतमें श्रुतकेवली भद्रबाहु अपने शिष्य चद्रगुप्त मौर्य को और अनेक जैन साधुओ को साथमे लेकर सबसे पहले ईस्वी पू० २९८ में पहुँचे थे।[१२] लेकिन अन्य एक प्रमाणके अनुसार प्रगट है कि जैनधर्म महावीरको जीवद्दशा मे हो दक्षिण भारत में फैला था ? भ० महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। उस समयमें जैनधर्म कलिंग, महाराज, आँध्र और सिंहल में व्याप्त हुआ था। हाथी गुफा शिलालेख से मालूम पडता है कि महावीर कलिंग आये थे और उन्होनें कुमारी पर्वतसे जैनधर्मका प्रचार किया था। अधिकतु ईश्वी०पू०पहली सदी में जैनधर्म कलिंगका राष्ट्रधर्म हो गया था। महाराष्ट्रमें भी भ०महावीरसे पहले जैन धर्मका प्रचार हुआ, क्योकि भ० पार्श्वनाथ के शिष्य करकंडु कलिंगके राजा थे।उन्होने तेरपुर (धाराशिव) गुंफाका परिदर्शन किया था और वहा जैन मंदिरो का निर्माण कराया था।[१३] उन मंदिरो में जिनेन्द्रो की मूर्त्तिया स्थापित हुई थी।

इसके साथही यह भी कहा जाता है कि आंध्र में मौर्यो के राजत्व से पहले जैनधर्म प्रचारित हुआ था। उसी तरह,'महा-

---

12 Cambridge Histry of India VolI Page 164-65 और Epigraphia Carnatica vol. I. और Early History India. Page 154.
13 I. B O R S Vol XVI Parts I-II and Karakanduacharya's (Karanja Series) Introduction.

वंश' से मालूम होता है कि ईस्वो०पू० १५वो सदी में जैनधर्म सिहलमें प्रचारित हुआ था। इस तरह पूर्व उत्तर और दक्षिणमें चेर और तामिलनाड आदि में श्रुतकेवली भद्रबाहुसे बहुत पहले जैनधर्म पहुँचा था। रामस्वामो आयागार महोदय ने भी[14] प्रश्न उठाया है कि उत्तर भारत का एक धर्म दक्षिण भारतको विना स्पर्श किये हुए सिंहल पहुँच सका,यह कैसे संभव हुआ ?

केवल यह तभी समव हो सकता है जबकि यह संभव हो कि उत्तरसे बौद्धधर्म समुद्रके मार्गसे दक्षिणको गया था। इसके अतिरिक्त यह भी सोचना चाहिये कि एक जैन आचार्य अपने विशाल जैन सघके अनेक साधुओ को अपने अधीन दक्षिण मे ले गये तो यह कैसे संभव है कि भद्रबाहु के पहले वहाँ जैनधर्म का कोई प्रभाव नहीं, इसपर भला कैसे विश्वास किया जाय ? जैन पुस्तको मे लिखा है कि सबसे पहले ऋषभ ने जैनधर्म को दक्षिण भारतमे प्रचारित किया था उनके पुत्र बाहुबली दक्षिण भारतके प्रथम राजा थे। वे ससार को त्याग कर नग्न जैन साधु बने थे। गोदावरी के किनारे पर अवस्थित पोदनापुरमें उन्होने कठिन तपस्या की थी और सर्वदर्शी बने थे। तब बाहुबली जी ने दक्षिण भारतमें जैनधर्मका प्रचार किया था। इससे मालूम पड़ता है कि जैनधर्म दक्षिण भारतमे अति प्राचीनकाल से प्रविष्ट हुआ था। इसके अतिरिक्त साहित्य और स्तभ आदि प्रमाणो से जैनधर्मका यह ऐतिहासिकत्व प्रमाणित हो रहा है।

जैन साहित्यमें भद्रबाहुके बहुत पहले दक्षिण मथुरा, पोदनपुर, पलाशपुर उद्दिल, (मलयगिरि के पास) महाशोक नगर आदि स्थानो की कथा कही गयी है दक्षिण मथुरा पाडव भाइयों द्वारा स्थापित हुई थी। उस समय वे वनवास में थे। दक्षिण

---

14 Studies in South India Jainism Part I. P.33.

भारतमें पांडवोंके अवस्थान के समय द्वारका नष्टभ्रष्ट हो चुका था[15] इसके कारण श्रीकृष्ण अपने भाई बलदेव के साथ द्वारका छोडकर दक्षिण आ रहे थे । रास्ते में जरतकुमार के निमित्तसे कौशाबी के वन में श्रीकृष्ण अप्रकट हुए ।

पाडव भाइयो ने जब यह दुख वार्ता सुनी तो वे बलराम की सान्त्वनाके लिये दौडे और नारायणके शवको शृंगि पर्वतमे दग्ध किया । इस शृंगि पर्वतमे बलराम ने तपस्या शुरू की। दक्षिणको जाने पर पाडवोने सुना कि पल्लव देशमे भ० अरिष्ट नेमि विहार कर रहे हैं, तब वे उनके पास गये और जैनमुनि के शिष्य बने ।[16] उनके साथ एक द्राविड राजा भी जैन बने थे जिन्होने शत्रुजय पर्वतसे सभी का उद्धार किया था।

जैन साहित्य के अतिरिक्त हिन्दू पुराणो में भी जैनमत मिलता है । देव और असुरो के युद्ध मे विष्णु ने दिगम्बर जैन मुनिका अवतार लेकर असुरोकी गोष्ठीमे अहिंसा और सौहार्द की वार्ता का प्रचार किया था । [17] उस समय वे नर्मदा के किनारेवाले प्रदेशमे वास करते थे । इससे मालूम पडता है कि बहुत पहले नर्मदा नदीके किनारेवाले प्रदेशमें जैनधर्मकी केन्द्रिक प्रतिष्ठा हो चुकीथी । आज भी जैन लोग वहा पूजा करते हैं ।

सम्राट नेबुचादनेजार के ताम्र शासन से मालूम पडता है कि (ईस्वी पू० ११४०) (काठिआवडामे इसका प्रमाण भी है) यह सम्राट रेवा नगर के अधिपति थे और द्वारका आये थे ।

---

१५ जैन हरिवंश Page 487

१६ जैनहरिवंश सर्ग ५३-६५, दक्षिण जैन इतिहास Vol III. Page 78-80

१७ विष्णु पुराण, अध्याय. XVIII.
पद्म पुराण, अध्याय. I.
मत्स्य पुराण अध्याय. XXIV.

वहां नेमि के नाम से रेवतक पर्वत में उन्होने एक मंदिरका निर्माण किया था।[18] यह नेमि ही तीर्थङ्कर अरिष्ट नेमि है। नेबुचादनेजार उनकी भक्ति करते थे। उनका राज्य बाद में रेवानगर के नामसे प्रसिद्ध हुआ था। सिद्धवरकूट के नामसे एक जैन तीर्थ रेवा नदी के ऊपर अवस्थित है। इससे मालूम होता है कि जैनधर्मने दक्षिण भारत में खूब प्राचीन कालसे स्थान जमा लिया था।

तामिल साहित्य में भी इसका प्रमाण मिलता है। तामिल व्याकरण "अगत्तियमु" और "तोल्काप्पियमु" से मालूम पड़ता है कि जैनधर्म दक्षिण भारतमें प्रचलित था। "तोल्काप्पियमु" एक जैन साधुके द्वारा ईस्वी पू० ४ थी सदी में लिखा गया था ऐसा लोग अनुमान लगाते हैं। "मणिमेखलै" और "शिलिप्पदीकारमु" भी हमे अनेक उपादान देते हैं।

अधिकंतु मथुरा और रामनगर जिलामें ईस्वी पू० ३री सदी का जो ब्राह्मी लेख मिलता है उससे मालूम पड़ता है कि इन प्रान्तोमें जैनधर्म अत्यन्त प्रबल था। नही तो उस समयकी जिन मूर्त्तिया इतने अधिक परिमाणसे नही दिखाई देती। अतएव जैन धर्म दक्षिण-भारतमें मौर्यकालसे बहुत पहले प्रचारित हुआ था। हिंदूशास्त्रो ने बुद्ध को एक अवतार माना है।[19]

बौद्ध मतके अनुसार ऐसे अनेक बुद्ध विभिन्न युगोमें जगत्को शिक्षा देने के लिये आये है। यह है हिन्दुओ की अवतार कल्पना का अनुरूप। बौद्धों की तरह जैनलोग भी २४ तीर्थंकरो में विश्वास रखते हैं। हिन्दू पुराणो ने जिस तरह बुद्धदेव को अवतार माना है उसी तरह ऋषभदेवको भी विष्णु का अवतार

---

18 Times of India, 19 th March, 1935 Page-9 और संक्षिप्त जैन इतिहास III. पृ०६५-६६

१९ बुद्ध वंश

माना है। वे यज्ञफल संभूत और चक्रवर्ती राजा थे। अन्त में अपने पुत्रो को राज्य भार अर्पण करके उन्होने यतिव्रतका अवलंबन किया था।[20]

इस दृष्टिसे विचार करने पर जैन और बौद्धधर्म अंशविशेष तथा क्षेत्र विशेषमे वेदविधिओका खडन करने पर भी दोनो वैदिक धर्मके सस्कार परम्परासे एकदूसरेसे प्रभावित हुए माने जासकते हैं। प्रत्यक्ष रूपसे प्रासंगिक न होने पर भी इस ऐतिहासिक अनेच्छेक को यहाँ सूचित करनेका प्रधान कारण है जैनधर्मकी मूल प्रकृति और ऐतिहासिक कालका निरूपण। उसके बाद धर्मकी आलोचना अधिकप्राजल हो जायेगी। इतिहास की पट्टभूमिसे सम्राट चन्द्रगुप्त के राजत्व मे कलिंग की राजशक्ति हमें स्पष्ट दिखाई देती है। हम समझते हैं कि कलिंगके राजा उस समयमी जैनधर्मावलबी थे। चद्रगुप्तका कलिंगका आक्रमण विना किये ही दाक्षिणत्य भूभागमे प्रविष्ट हो जानेका कारण यह समधर्मत्व ही है।

कलिंगवासी प्रारमसे ही स्वाधीनवृत्ति के पोषक और बलवान थे। इतने शक्तिशाली और स्वाधीन होने के कारण ही कलिंगकी सेना स्वाधीनता और स्वादेशिकताके लिये प्राण देकर अशोकके साथ लडी थी।[21] यद्यपि इन युद्धोमे कलिंग देशकी स्वाधीनता चली गई और चडाशोकने 'देवाना प्रिय' बनकर विश्वजनीन मैत्रीका प्रचार किया था। उससे उद्भासित होने पर भी कलिंग के लोग अपनी धर्मदीक्षाको भूल नही सके थे। खारवेलके दिग्विजयसे उसका प्रमाण मिलता है। खारवेल

२० भागवत १ स्कन्ध, अध्याय ६
  १ स्कन्ध अध्याय ७
  ५ स्कन्ध अध्याय ४
  ७ स्कन्ध अध्याय ११

21– R.E VIII. Corpus Inscriptionum Indicarum Vol I by Hultsch.

उत्तर भारतको जीतकर जिनमूर्तिको पाटलीपुत्र से कलिंग ले आये थे। [22] खारवेलके युगसे ही हमारे आलोच्य विषय का ठीक आरम्भ हुआ है ऐसा मान लेना उचित होगा। यह है ई०पू० १वी सदी की बात। अशोकके बाद कलिंग फिर स्वाधीन बनकर खारवेल के समय समग्र भारतमें एक शक्तिशाली साम्राज्यमे परिणत हुआ था। खारवेल जैनधर्मकी महिमा का प्रचार करने मे लग गये थे।

जैनधर्मका यह मत यद्यपि उड़ीसा मे लगभग ईस्वी ५ वी सदी तक रहा था जबकि जैन और बौद्ध तान्त्रिकवादका प्रवर्त्तन हो चुका था। यह प्रभाव लगभग ईस्वी १० वीं सदी के अन्त तक अव्यहत रहा। मगर अन्तमे वैष्णव धर्म के स्रोत से लुप्त हो गया।

22 Select Inscriptions-D. C Sarkar.
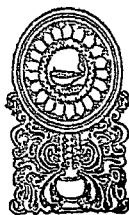
३. कलिंग में आदि जैनधर्म

जैनधर्ममें जो २४ तीर्थंकरों की उपासना की विधि है उन में से कितने ऐतिहासिक महापुरुष और कितने काल्पनिक महापुरुष थे उनकी युक्ति युक्त समीक्षा अभी तक नही हो सकी। धर्म के स्रोत में डगमगाने से वैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार उस की उपयुक्त मीमांसा हो नही सकती। ऐतिहासिक जैकोबी और अन्य पण्डितो ने जैन शास्त्रो की आलोचना से सिद्धान्त निर्धारित किया है कि पार्श्वनाथ से जैनधर्मका आरंभ हुआ। ऐतिहासिक भित्ति के आधार पर पार्श्वनाथ ही जैनधर्मके प्रथम प्रवर्त्तक के रूपमे माने जाने चाहिये ; परतु साथ ही जैकोबीने यह भी माना कि जैनोकी २४ तीर्थङ्करो की मान्यता में तथ्य होना चाहिये-प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की ऐतिहासिकता भी तथ्यपूर्ण हो सकती है।[1]

भ०पार्श्वनाथ को जैनधर्मका प्रवर्त्तक मानने में किंवदन्ती और इतिहास दोनो सहायक होते हैं।[2]

भ० पार्श्वनाथ जैनधर्मके आदि प्रवर्त्तक हो या न हों, इसमें सदेह नही है कि उन्होने सबसे पहले कलिंगमें जैनधर्मका प्रचार किया था। भ० पार्श्वनाथ के नामके साथ कलिंगकी

---

1 I A. II Page 261 and V.IX Page 172 इस प्रसग में सर आशुतोष मुखार्जि Silver Jubilee vol. III Page 74 82 देखिये।

2 O. H. R. J. Vol. vi. Page 79.

प्राचीन संस्कृति का घनिष्ठ संपर्क रहा है । उदयगिरि और खडगिरि की गुफाओमें भ० महावीर की मूर्त्ति और कथावस्तु ने अन्य तीर्थंकरो से अधिक विशिष्ट स्थानका अधिकार किया है। किंतु खंडगिरिमें ठौरठौर पर भ० पार्श्वनाथको ही मूल नायक के रूपमें सम्मान प्रदान किया गया है। निस्सदेह कलिंग के साथ भ०पार्श्वनाथका जो संपर्क है उसका दिग्दर्शन पूर्व अध्याय में सूचित हुआ है। प्राच्य-विद्या-महार्णव श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने "जैन भगवती सूत्र" "जैन क्षेत्र समास.' और भावदेव के द्वारा लिखी गयी "२४ तीर्थंकरो की जीवनी" की आलोचनासे सबसे पहले कहा है कि भ० पार्श्वनाथने अंग वग और कलिंग में जैनधर्मका प्रचार किया था। धर्म प्रचारके लिये उन्होने ताम्र-लिप्त बन्दरगाह से कलिंगके अभिमुखमें आते समय कोपकटक मे धन्य नामक एक गृहस्थका आतिथ्य ग्रहण किया था। वसु महोदय के मतके अनुसार यह कोपकटक बलेश्वर जिलाका कुपारी ग्राम है। भौम ताम्रफलक से मालूम होता है कि ८वी सदीमें यह कुपारीग्राम कोंपारक ग्रामके रूपमें परिचित था।[3]

'भ० पार्श्वनाथ गृहस्थ धन्यके घरमें अतिथि हुए थे'-इस घटनाको स्मरणीय करनेके लिये कोपकटक को उपरान्त धन्य-कटक कहा जाने लगा था। वसु महोदयने इस विषयमें अधिक प्रकाश डालते हुए लिखा है कि उस समय मयूरभज में कुसुम्ब नामक एक क्षत्रिय जातिका राजत्व था और वह राजवश भ० पार्श्वनाथ के प्रचारित धर्मसे अनुप्राणित हुआ था। यह विषय वसु महोदय को कहा से मिला हमे मालूम नही है।

भ० पार्श्वनाथ के बाद भ० महावीर जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर के रूप में आविर्भूत हुए थे। जैनियो के "आवश्यक सूत्र" में लिखा हुआ है कि भ० महावीर ने तोषल में अपने

3 Neil Pur Copper Plate

धर्मका प्रचार किया था और वे तोसल से मोषल गये थे।

"ततो भगवं तोषलिं गम्रो ·· ·· तत्थ सुमागहो नाम रट्ठम्रो.पिययत्ततो भगवम्रो सो मोएइ ततो सामी मोसलीं गम्रो" (ग्रावश्यक सूत्र पृ० २१६-२०)

हरिभद्रने 'आवश्यक सूत्रकी वृत्ति या टीका लिखी, जो हरिभद्रिया वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है। उस टीका में हरि भद्र ने स्पष्ट लिखा है कि महावीर स्वामी के पिता सिद्धार्थ तोषल के तत्कालीन राजाके बन्धु थे और कलिंग के राजा ने अपने राज्यमें धर्म प्रचार के लिये भ० महावीर को आमन्त्रित किया था।[४]

श्री जायसवाल का कहना है कि सम्राट खारवेल के हाथी गुफा शिलालेख की १४ वी पक्ति में महावीर स्वामीके कलिंग आने की और कुमार पर्वत से अपने धर्म का प्रचार करने की सूचना दी गयी है।[५]

जैनग्रन्थ"उत्तराध्ययन सूत्र"[६] से प्रगट है कि भ० महावीर के समय मे कलिंग एक जैनभूमि था। कलिंगका पिहुँड नामक एक प्रसिद्ध बन्दरगाह उस समय जैनधर्मका प्रधान तीर्थक्षेत्र था। दूर देशो से वणिग् लोग वाणिज्य के लिये और कोई कोई धर्म के लिये भी इस बन्दरगाह को आते थे। जैन 'उत्तराध्ययन सूत्र'में लिखा हुआ है कि चपा राज्य से एक जैन वणिक पिहुँड बन्दरगाह को आकर उधर कुछ काल तक रहा था और कलिंग की एक सुन्दर नारी के साथ विवाह किया था। फ्रेंच पडित सिलवेन लेवि ने नि सन्देह कहा है कि यह 'पिहुँड' बन्दरगाह

---

1 Haribhadriya Vritti (Agamodaya Samiti 218-220 Also vide J. B. O. R. S. VIII, P.223

5 J. B. O. R. S VIII.२४६ पृस्ठा

६ उत्तराध्ययन सूत्र पृष्ठ -२१

खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख का विषय है।[7]

खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख में यह भी लिखा गया है कि खारवेल से बहुत पहले कलिंग के राजाओं के द्वारा प्रपुजित पिथुड नामक एक जैनक्षेत्र था।

इस आलोचनासे स्पष्ट सूचित होता है कि भ० पार्श्वनाथ के समय कलिंगमें जैनधर्म का प्रभाव पड़ा था और भ० महावीर के समय अर्थात् ई०पू० ६ वीं सदीमें इस धर्मके द्वारा कलिंग विशेष रूपसे अनुप्राणित हुआ था। ई०पू०४ थी सदी में महापद्म नन्द ने कलिंग पर आक्रमण किया था। वह कलिंग विजय के प्रतीक रूप बहुमान से जातीय देवता के रूपमें पूजित होने वाली कलिंग जिन प्रतिमा को अपनी राजधानी राजगृह को ले आये थे। यह विषय न केवल पुराणों से दिखाई देता बल्कि खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है। इस लिये ईस्वी पू० ४ थी सदीमें भी कलिंगमें जैन धर्म राष्ट्रीय धर्म के रूपमें प्रतिष्ठित था ऐसा नि.सदेह कहा जा सकता है।

ईस्वी पू० ३री सदी में कलिंग के ऊपर एक अकथनीय विपत् आयी। मगध के सम्राट अशोक ने कलिंग के खिलाफ युद्ध की घोषणा की और कलिंग को छार खार कर डाला।

इस युद्धमें कलिंग के एक लाख आदमी मारे गये, डेढलाख बन्दी हुए और बहुत लोग युद्धोत्तर दुर्विपाक में प्राणों से हाथ धो बैठे। मेरा दृढ विश्वास है कि कलिंग के जिस राजा ने अशोकके साथ युद्ध चलाया था वह एक जैन राजा था। अशोक ने अपने १३वीं अनुशासनमें गंभीर अनुशोचना के साथ स्वीकार किया है कि कलिंग युद्ध में ब्राह्मण तथा श्रमण उभय संप्रदाय के लोगों ने दुःख भोगा था। अशोक ने जिनको श्रमण कहा है

7– I. A. 1956 Page 145

वे निःसंदेह जैन थे कलिंगके भाग्यविपर्ययमें अशोक आंसू गिरा कर रोते थे सही, मगर नन्दराजाके द्वारा अपहृत कालिंग जिन प्रतिमाको उन्होंने भी नहीं लौटाया था।

उनके बाद जब खारवेल कलिंगके सिंहासन पर बैठे तब उन्होने अपने राजत्वकी १७ वी सालमे मगधके खिलाफ अभियान किया और उस कालिंग जिन प्रतिमा को कलिंग लौटा कर लाये।

अशोकके बाद उनके नाती मगधके राजा हुए थे। अशोक पहले जैसे बौद्धधर्म का पृष्ठपोषक था, ठीक उसी तरह सम्प्रति जैनधर्मका पृष्ठपोषक रहे। उनके राजत्वमे कलिंग मे जैनधर्मका अभ्युत्थान होना सभव था। कलिंगमें मौर्यवंशके बाद स्वाधीन चेदिवंशका अभ्युदय हुआ। इस वंशके राजत्वकाल में कलिंगमें जैनधर्म पुनर्बार जातीय धर्मके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ।

खारवेल इस वंशके तीसरे राजा थे। उनके कार्यकलाप और जैनधर्मके प्रति दानके बारेमें परवर्त्ती परिच्छेदोमें विस्तृत आलोचना की गई है। कलिंगमें "आदिधर्म जैनधर्म" की वर्णना करते हुए भ० पार्श्वनाथके जन्मसे लेकर खारवेल तक धारवाहिक रूपमें एक संक्षिप्त आलोचना दी गयी है।

इस अलोचना के पर्यायमें अशोकके समसामयिक कलिंगके जैन राजा की तथा मौर्योत्तर युगके राजा खारवेल की सूचाना दी गयी है। कलिंग मे जैनधर्मकी प्राचीनताका प्रतिपादन करने में मौर्ययुग से बहु पूर्ववर्ती कलिंग के एक राजाका विषय यहा उपस्थापित करना प्रासंगिक और विधेय मानता हूँ। वे कलिंगके राजा करकण्डु भ० महावीर से पहले और भ० पार्श्वनाथ के बाद वे कलिंग के राजाथे, यह सुनिश्चित है। कोई कोई उनको पार्श्वनाथ के शिष्य मानते हैं।[8]

---

8 — Indian Culure Vol IV 319 ff.

जैनग्रन्थ "उत्तराध्ययन सूत्र" १८ वां अध्यायमें करकण्डु के बारे में जो लिखा है, उससे मालूम पड़ता है कि जब द्विमुख पचाल के, नेमि विदेह के और नग्नजित् गाधार के शासक थे तब करकडु कलिगके राजा थे। इन चार राजाओ को उत्तराध्ययन सूत्रो के लेखक ने पुरुष पुगव की आख्या दी है।[9]

उन राजाओ ने अपने अपने पुत्रो के हाथो राज्यभार को समर्पित करके श्रमणोके रूपमे जिनपन्थका अवलम्बन किया था। बौद्धोने राजा करकडु को एक प्रत्यक्ष बुद्ध कहा है और बुद्धसे पहले जिन महापुरुषोंका जन्म हुआ था उनमे से करकडु को विशिष्ट स्थान दिया है।[10]

"कुभकार जातक" से मालूम पड़ता है कि दंडपुर करकडु की राजधानी थी। राजाने अपने अनुचरो के साथ दडपुर की एक आम्रवाटिकामें प्रवेश कर एक फलपूर्ण वृक्षसे पका हुआ आम लेकर भक्षण किया। यह देख सब ही ने आम तोड के खाये जिससे वह पेड़ ध्वस्त विध्वस्त हो गया।

राजा करकडु बड़े भावुक थे। बलवान् वृक्षकी उसदशा को देख वे गभीर चिन्तामें मग्न हुये और अन्तमे उन्होंने निश्चित किया कि ससार की धनसपत्ति दु खोका कारण है। इस भावना से वे ससार त्यागी बने और उनको प्रत्येक बुद्धको ख्याति मिली।

करकंडु के बारेमे यह है एक बौद्ध उपाख्यान। जैनियो ने "करकडु चरिय" नामक एक पुस्तक का प्रणयन किया है। "अभिधान राजेन्द्र"में भी करकडु के बारेमें विस्तृत वर्णना है, जैनग्रन्थसे उपलब्ध उपाख्यानकी विस्तृत वर्णना आगे दी गयी है।

करकंडु उपाख्यान–पूर्व कालमें चपक (चम्पा) नगरीमें दधिवाहन नामक एक राजा थे। चेटक महाराजा की कन्या

९– उत्तराध्ययन सूत्र, १८ वा अध्याय, श्लोक ४५-४६
10– Fousball's Jataka No 3 P. 376.

पद्मावती उनकी रानी थी। रानी ने अपने प्रथम गर्भके समय एक अद्भुत प्रकारकी अभिलाषा को व्यक्त किया था। उन्होने सोचा था कि स्वामीके साथ पुरुषके वेशमें हाथीपर चढकरवन को जावे और राजा स्वयउसके ऊपर छत्रधारण करें। किन्तु लज्जा के कारण वे राजाके सामने इस बातको प्रकाशित नही कर सकी। इस दोहलेकी चिन्तासे वे क्रमश दुर्बल होने लगीं। राजाने उनसे वहुवार अनुनयके साथ उनकी अभिलाषाके बारेमें पूछा था। अन्तमें बडे कष्टसे पद्मावती ने अपना गर्भाभिलाष व्यक्त किया था। चिकित्सा शास्त्रके अनुसार गर्भवती स्त्रीकी सकल प्रकार इच्छाओ की पूर्ति होनी चाहिये। अतः राजा दधिवाहनने रानी की इच्छामें सम्मति दी एव रानीको अपने हाथी पर बैठाकर स्वय ही पीछे छत्रोत्तोलन करके वनके प्रति अग्रसर हुए। राजा और रानीके वनमें प्रवेश होते ही बारिश शुरू हुई। दीर्घ ग्रीष्म के बाद पहली वर्षा की आर्द्रता के कारण मिट्टी से एक प्रकार का सुगध निकला और मलय पवन के साथ वन की चारों ओर से नाना प्रकार के फूलो की महक छुट आयी। विस्मृत मातृभूमि के प्रशान्त हृदय ने हाथी के मनमें झंकार की सृष्टि की। वर्षा के प्रारम्भ में मिट्टी का गध आघ्राण कर हाथी उन्मत्त होते हैं। प्रक्रीड़ा का स्मरण करते ही उस हाथी के गण्डस्थल से मद जल स्रवित हुआ। और वह निविड़ अरण्य की ओर द्रुत गतिसे दौड़ने लगा। उसका गतिरोध कर राजा और रानी का उद्धार करनेमें कोई भी सैनिक सक्षम नही हुआ। राजा ने प्राणरक्षा के अन्य उपाय न देख सामने खड़े हुए एक वटवृक्ष की शाखाको पकड़ने के लिये रानी को कहा। वटवृक्ष के निकट आते ही राजा ने एक शाखा पकड़कर अपने प्राणों की रक्षा की। किन्तु गर्भवती रानी भय के कारण वृक्ष शाखा नही पकड़ सकी।

हाथी पद्मावती को अपनी पीठ पर बैठाये हुए निविड अरण्य के अभ्यन्तरमें प्रविष्ट हो ले गया। दधिने अनागत तथा अनिश्चित विपत्तिसे रानीके उद्धारका अन्य उपाय न देख शोका-कुल हृदयसे अपने सैन्योंके साथ चंपा नगरको प्रत्यावर्त्तन किया।

रानी को लेकर दौड़ते दौड़ते क्लान्त तथा ग्रीष्म पीड़ित होने के कारण स्नान और जलपान की आशा से हाथी ने एक पोखरी में प्रवेश किया। तब रानी उसकी पीठ से नीचे सरक आई और पोखरी में निर्विघ्न तैरने लगी। चारों ओर निविड अरण्य से भरी हुई पर्वतमाला को देखकर भयविह्वला पद्-मावती ने अपने गर्भाभिलाष के लियें अनुताप किया। बहुत देर में निजको सान्त्वना देकर भगवान् को प्रणिपात कर जाते जाते एक तापस के साथ उनकी भेंट हुई। रानी ने उन को प्रणाम किया। रानीको अभयदान करके तपस्वीने पद्मावती के परिचयकी जिज्ञासाकी। रानीने तपस्वीको निर्विकार समझकर सारा वृत्तान्त कहा। तपस्वीने चेटक राजा (पदमावतीकेपिता) के मित्रके रूपमें अपनेको अभिहित किया। तपस्वीने उपदेश देकरकहा "वत्से! समस्त संसार विपत्का स्थान और अनित्य है। अतः संसार सम्भूत प्रत्येक पदार्थकी अनित्यता को पहचान कर नाना विषयों में आशा बढाना अनुचित है। अब तुम्हारे लिये आश्रम चलकर क्लान्ति दूर करना आवश्यक है।" पद्मा-वती आश्रमको गई और फलाहार कर सुस्थ होनेके बाद आश्रम के सीमान्तके पास तपस्वीने उनको विदा किया। मुनिके निर्दे-शानुसार दन्तपुरकी ओर जाते जाते एक जैन सन्यासिनी के साथ रानीकी भेंट हुई। तपस्विनीने पद्मावती को दन्तवक्र राजाके अन्तःपुर में लेजाकर उनके परिचयकी जिज्ञासा की। रानीने सारा आत्मचरित्र कहा लेकिन गर्भधारण के वृत्तान्त का प्रकाश नहीं किया। रानीके शोकाकुल चित्तमें सान्त्वना देने

के लिये सन्यासिनी ने कहा " संसार सुख यथार्थ सुख नही हैं, वे केवल सुखाभास मात्र है। अत प्रत्येक सासारिक क्लेशसे निस्तार पाने के लिये त्यागव्रत के अवलबन से आध्यात्मिक चिन्तवन करना ही श्रेयष्कर है।

साध्वीके सदुपदेश से वैराग्य प्राप्तकर पद्मावतीने उनसे दीक्षा ली थी। व्रतविघ्न के भयसे उन्होने अपने गर्भके बारेमें कुछ प्रकाश नहीं किया था। एक महीने के बाद गर्भवृद्धि होने से जैन सन्यासिनी ने उसके बारेमें प्रश्न किया। पद्मावती ने "मेरा यह गर्भ पहले से ही रहा है, किन्तु व्रतविघ्नके भयसे मैने उसे प्रकाशित नही किया था।"

लोकापवाद के भयसे उन्होने पद्मावतीको एकान्त स्थान में रखवा दिया। ठीक समय पर एक पुत्र पैदा हुआ। रानीने शिशुको रत्नकबल से आच्छादित करके पिताके मुद्राकित नाम के साथ श्मशानमें त्याग दिया। श्मशान का मालिक जनसगम (चडाल)ने शिशुको उसी अवस्था मे देख उसको लेकर अपत्य शून्या अपनी पत्नी को समर्पित किया। सब जानकरभी पद्मावती ने जैन सन्यासिनी को पाशमृत पुत्र जात होने का सम्बाद प्रेरण किया था।

अलौकिक तेजस्वी दत्तापकर्णिक (नामक वह बालक) जनसगम के घरमें बढने लगा। जननीप्राण के आवेग से पद्मावती प्रत्यह अलक्ष्य में रहकर बालक की गतिविधियो को लक्ष्य करती और कभी कभी चंडालिनी के साथ मधुर आलाप व्यस्त रहती। दत्तापकर्णिक क्रमश महा-तेज से शोभने लगा। प्रत्यह वह पडोसी बालको के साथ खेलता रहा। गर्भधारण के दिन से लेकर शाकादि भोजन के कारण उस बालक को कडु वलता नामक दोष था। अपनी चेष्टासे तथा साहाय्यकारी क्रीड़ासंगियो के द्वारा शरीर का कंडु दूर करवाने के कारण

लोग उसको "करकडु' के नाम से पुकारते थे। पुत्र के मुख अवलोकन करने को आशा से पद्मावती प्रत्यह चडाल के घर जाती और अपने पुत्र दत्तापकर्णिक या करकंडु को भिक्षालब्ध मिष्टान्नादि प्रदान करती।

छ वरष की उम्र में पिता के आदेश से करकडु श्मशान के कार्यों में नियुक्त रहा। एक दिन जब वह श्मशान की रक्षा में नियुक्त था तब उसको एक साधु का दर्शन मिला। साधुने उस श्मशान में उगे हुये शुभलक्षणयुक्त एक बास को दिखाकर कहा "मूल से चार अगुल के परिमाण से जो इस बास को ले कर अपने पास रखेगा उसको जरूर राज्य मिलेगा।"

करकडुने वह बासका टुकड़ा अपने पास रक्खा, और नियतकालमें उनको दतिपुर का राज्य प्राप्त हुआ। अन्तमें वह अपने पितृराज्य चम्पाके भी अधिकार हुये थे। उन्होंने कलिग एव दक्षिण भारतमें जैनधर्मको प्रभावना की थी। इस आख्यान से कलिगमें जैनधर्मकी प्राचीनता का बोध होता है।

४. खारवेल और उनका कालनिर्णय

खारवेल उत्कल तथा भारतीय-इतिहास की एक अविस्मरणीय विभूति हैं। उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ "हाथी गुंफा" के शिलालेखो में प्रशस्त रूपसे लिपिवद्ध पायी जाती हैं। परन्तु उनका "कालनिर्णय" तो भारतीय इतिहासकारो के लिए एक कठिनाईका विषय और प्रधान समालोचना की वस्तु बन गया है। भारतीय इतिहास में यह "कालनिर्णय" तरह तरह के विभ्रमो की सृष्टि करता है। इसलिए इस समस्याके समाधन के लिए साहित्य अथवा किम्बदतियो से अच्छे अच्छे विषय संग्रह करना हमारी धृष्टता नहीं समझी जाना चाहिये क्योकि सावधानताके साथ साहित्य तथा किम्बदन्तियो या लोक-कथाओ से आवश्यकीय विषय वस्तु ग्रहण की जासकती है।

निस्सदेह बहुत दिनोसे "खारवेलका समय निर्द्धारण" इतिहासकारो के लिए एक विवादग्रस्त विषय बना हुआ है। किंतु इस प्रसंगमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि उडीसाके पुरीजिले के कुमारगिरि (पहाड)की शिलालिपियो से हमें खारवेलका प्रमाणिक परिचय मिलाता है। उन शिलालिपियोमें क्रमश. उनके १३वर्षो तक शासन करने की इतिवृत्ति अङ्कित है। उसमें उनको 'अधिपति'एव उनकी रानीको "अग्रमहिषी" के रूपसे अभिहित किया गया है। इस अग्रमहिषी द्वारा निर्मित 'स्वर्ग-पुरी' नामकी गुफावाले लेखमें खारवेल को 'चक्रवर्त्ती' के नाम से सवोधित किया गया है। पर खारवेलके पूर्व पुरुषोके बारेमें

हमें कही से कुछ भी वृत्तान्त प्राप्त नही होता है। न उनके वंश का परिचय, न पिता माताके नामका कही पर उल्लेख है। इसी के कारण उनका काल-निर्णय एक समस्या बन गया है। शिलालिपियोमें ऐसीकोई दिनाक नही है, कि जिससे कालनिर्णय किया जासके। अत हमें हठात् शिलालिपियोमें वर्णित कथाओ की ऊहापोहात्मक चर्चा करनी पडती है।

पुराने ऐतिहासिकों में स्वर्गीय प० भगवानलाल इन्द्रजीने पहले स्थिर किया था कि खारवेलके शासन कालके तेरहवे वर्ष, हाथीगुफा के शिलालेख खोदित हुए थे। हाथी गुफा के लेख में मौर्य काल का उल्लेख है। इस मतके आधार से वह खारवेल शासन के इन १३ वर्षों को वे मौर्यो के १६५ वर्षसे मानते थे। अर्थात् वह काल ईसा पू० ९० अवश्य होगा; क्योंकि स्व० इन्द्र जी ई० पूर्व २५५ को अशोक के कलिंग विषय का समय मानकर उसे मौर्य काल को पहली वर्ष मानते थे। गणनाके फल स्वरूप खारवेलका सिंहासनारोहण का समय ई० पू० १०३ (ई० पू० २५५-१६५+१३ ई० पू० १०३) होता है, ऐसा उनका विश्वास था।[2]

परन्तु डॉ० फिलट्नें[3] प्रोफेसर लुजारस[4] के मतका अनुसन्धान कर मौर्य काल के बारे में विरुद्ध मत स्थापन किया है। उनका कहना है कि हाथीगुफा के शिलालेखो में अथवा भारत के इतिहासमें मौर्य कालके बारेमें कोई सत्य बात ज्ञात नही होती। शिलालेखकी छटवी पक्तिमे लिखित "तिवस-सत्" को वे १०३ वर्ष मानकर एव शेष नन्दराजा के राजत्व काल

1 Proceedings of the International Congress of Orientalists, Leyden. 1889

2 Ibid 3 J. R A. S., 1910, 242, ff. 824 ff.

4 Ep. Indica. vol X App. 1960-1, No. 1345

को ई० पू० ३२२ मानकर खारवेल को ई० पू० २२४ ई०पू० ३२२-१०३+५= ई० पू० २२४) में कलिंग सिंहासन अधिष्ठित होना स्वीकार करते है।

स्व० इन्द्रजी की मौर्यकाल पद्धतिको डॉ० स्टेनकोने[5] डॉ० जायसवाल और प्रो० राखालदास बनर्जीने[6] पहले तो स्वीकार किया था; परन्तु बादमें शिलालेखो के विस्तृत अध्ययन और अनुसन्धान द्वारा उन्होने अपने मत परिवर्तन किये और मौर्यकाल निर्णयको अस्वीकार किया।

प्रो० बनर्जी ने[7] खारवेलकी जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाओके आधार पर यह प्रकाशित करने की कोशिश की थी कि उनका काल ई०पू० दूसरी शताब्दीका प्रथमार्द्ध है। इस सिलसिले में डॉ० जायसवालकी ग्रीकराजा डिमेंट्रियस और खारवेलको समसामयिक प्रमाणित करने की बात नही भूलनी चाहिये।[8] उनके मतमे सुगवशके प्रथमराज पुष्यमित्र (वृहस्पति मित्र) भी खारवेल तथा डिमेट्रियसके समसामयिक थे। स्व० बनार्जीने डॉ० जायसवालजीके इस मतका पूर्ण समर्थन किया है।

इससे ज्ञात होता है कि ऐतिहासिको ने खारवेलके समय निर्धारणके बारेमें दो तरह के मतका पोषण किया है। (१) मौर्यकालके आधार पर स्व० इन्द्रजी का और (२) मौर्यकाल का खडनकर डॉ० जायसवाल और प्रो० बनर्जीका मत किंतु आजकल शिलालेखोके विस्तृत अनुसन्धानसे मौर्यकालके बारेमें कोई सन्देह नही रह गया है। शिलालेखोके इस अशको "मुख्य कला" समझकर पाठ करना समुचित होगा डॉ० दिनेशचन्द्र ने 'मुख्यकला'को व्याख्या करते हुए इसे "प्रधानकला" कहा है।[9]

5. Ibid 6. Acta Orientalia. No. 1, 1923. P. 12 ff
7. Ep. Indica, Vol XX, P. 83 ff.
8. J. B. R. S, XIV 1928.
9. P. H. A. 1, 1950 Edition, P. 374 ff

चूंकि खारवेलके समयको ई० पू० दूसरी शतीके प्रथमार्द्ध का मानना समुचित नही है, डॉ० हेमचन्द्रराय जी चौधरी[10] डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार[11] डॉ० वरुआ[12] प्रो० नरेन्द्रनाथ घोष[13] आदिने ई०पू० पहली शतीके शेषार्द्धको ही खारवेलका प्रकृत समय माना है।

हाथी गुफाके शिलालेखोसे हमें कुछ शासकोंके नाम प्राप्त होते हैं। उनका समय निर्णित हो जाए तो कुछ हद तक यह समस्याभी हल हो जावेगी। अतः यही पर कुछ समसामयिक राजाओका काल निर्णय किया जाता है।

अपने राजत्वकाल के दूसरे ही वर्षमें खारवेल ने राजा सातकर्णका कोई भयन मानकर पश्चिम दिशाकी ओर सैन्यदल भेजा था। यह सातकर्ण अवश्य ही आन्ध्र सातवाहन वंशके राजा होगे। नानाघाट शिलालेखसे हमें ज्ञात होता है कि वे नायनीकाके स्वामी थे।

डा० रायचौधरीके मतसे तथा अन्य पौराणिक वर्णनो द्वारा ज्ञात होता है कि सुग राजाओने चन्द्रगुप्त मौर्यके सिहासनारोहणके १३७ वर्षके बाद ११२ वर्षतक राजत्व किया था और सगवश के अन्तिम राजा देवभूतिकी हत्याकर उनके अमात्य वासुदेवने काण्वायन वशकी स्थापना करके मगध पर अधिकार किया था। फिर ४५ वर्षके बाद काण्वायन वंशके अन्तिम राजा सुशर्मणको सिमूकने राजगद्दी से हटाया था। सिमूकसे आन्ध्र सातवाहन वशका प्रारंभ हुआ। इन पौराणिक कथाओ के अध्ययनसे डा० रायचौधरी ने निर्धारित किया है

---

10. Ibid; 11. Age of Imperial Unity 215 ff
12. Old Brahmi Inscriptions 1917, 253 ff
13 Early History of India, 1948, 189-199.
14. Indian Antiquary, Vol. XLVII (1916) 403 ff

कि ई० पू० ३० वर्ष (ई० पू० ३२४-१३७-११२-४५=ई० पू० ४५)[15] तक सिमूकने मगध अधिकार कर लिया था। सिमूक के और १८ वर्षतक कृष्णाके राजत्व करने के बाद ही सातकर्णं गद्दीपर बैठे। अगर ई० पू० ३० को हम सिमूकका शेष वर्ष मानें तो सातकर्णका सिंहासनारोहण कालको ई०पू० १२ मानना पड़ेगा (ई० ३०-१८=ई० पूर्व १२) अगर यह सही हो तो वह खारवेलके राजत्व कालका दूसरा वर्ष है अर्थात् ई० पूर्व १४ में खारवेल कलिंगके सम्राट बने थे[16]।

वृहस्पति मित्र— हाथीगुफा शिलालेखसे ज्ञात होता है कि खारवेल ने अपने राजत्व कालके १२ वें वर्षमें मगधाधिपति वृहस्पति मित्रको युद्धमें परास्त किया था। "मगधं य राजानं वृहस्पति मित पादे दलापयति"[17] हाथीगुफाके अतिरिक्त अन्य पाच शिलालेखो में हम वृहस्पतिका नाम पाते हैं:—

(१) मथुरा के पास मोरा नामक गावमे शिलालेखपर वृहस्पति मित्रका नाम उल्लिखित है। इस वृहस्पति मित्र की कन्याका नाम था यशमिता।[18]

(२) इलाहाबादके पासके पाफोसा शिलालिपिके लेख पर जिस वृहस्पति मित्रका पता मिलता है, उनके मामा आषाढ़ सेन थे।[19]।

(३) कौसाम्वी से प्राप्त मुद्राओके आधारसे कमसे कम दो वृहस्पति मित्रोका रहना हम अनुमान करते है।[20]

---

15 Age of Imperial Unity, P. 195 ff
16. O.H.R. I, Vol III No. 2 P. 86
17. Hathigumpha Inscription Line-12
18 Vogel.J R.A.S. 1912 Part II P. 120.
19. Ep Indica Vol II P.241.
20. C C.A.I. London-P. XCVI (Kosambi Coin)

(४) दिव्यावदान नामक एक बौद्धग्रन्थके उपाख्यान से यह मालूम है कि वृहस्पति नामका कोई मौर्यशासक था जो कि अशोकके पौत्र सम्प्रतिके उत्तराधिकारियो में था।[२१]

(५) डॉ॰ चौधरीजी का कहना है कि काण्ववशके बाद शायद किसी मित्र वशके राजाका (Neo-Mitra Dynasty) नाम वृहस्पति मित्र था।[२२]

सुगवंशके प्रतिष्ठाता पुष्यमित्र सुंग को खारवेल का समसामयिक मानकर डॉ० जायसवालने खारवेलके सिंहासनारोहण का समय ई॰ पू० १८२ निश्चित किया है[२३] पुष्यमित्र-सुंगको हाथी गुफा के वृहस्पति मित्र प्रमाणित करने की सत्यता पर यह पूर्णतया आधारित है।

डॉ० भोगेल[२४] डॉ० जायसवाल[२५] और रेपसन्[२६] ने मत प्रकाश किया था कि मोरा और पापोसा शिलालेखो में जिन दो वृहस्पति मित्रोके नामोंका उल्लेख किया गया है वे एक तथा अभिन्न हैं। क्योंकि उन शिलालेखों के प्राप्त स्थानो पर सुग वंशका अखड राजत्व था।

परन्तु इसे डॉ० 'आमानने ग्रहण नही किया है। उन्होंने देखा कि मोरा शिलालेख पापोसा शिलालेखो से अवश्य ही अत्यन्त प्राचीन हैं। अत दोनो वृहस्पति मित्रोमें पार्थक्य रहना भी स्वाभाविक है।

---

21. J.B O.R.S. II 96, III 480 Dr. B.M. Barua O B. 1. P. 243 ft
22. P. H. A. I. Page 401
23. J. B. O. R. S. III Page 236-245
24 J. R. A. S 1912 P. 120
25 Cambridge History of India Vol 1 P 524-26
26. J. B O. R. S. III P. 480 ff

फिर इन बृहस्पति मित्रोके साथ दिव्यावदान में रहने वाले बृहस्पति का कोई सपर्क नही जान पडता है। क्योंकि दिव्यावदानके बृहस्पति मौर्य वशके राजा माने गये हैं। डॉ॰ जायसवाल जी इससे पूर्ण सहमत है। उन्होने कहा है कि— This Brihaspati cannot be identified with the Brihaspati Mitra of the inscription for two reasons. Mitra is not the member of the name of the Maurya king. Nor would the letters of the inscription warrant on going back to B. C. 203, further. In that case this inscription would not be dated in the year of the founder of the family of the vanqnished rival [27]

इसलिए हाथीगुफाके बृहस्पति मित्रको डा॰ रायचौधरी तथा डा॰ वरुग्राने एक दूसरे वशका माना है जिसकी कि सज्ञा मित्रथी और जिस वशके राजा लोग ईसाके अव्यवहित पूर्व राजत्व किया करते थे। डॉ॰ रायचौधुरी का समर्थनकर डॉ: वरुग्रा ने लिखा है—

"We must still hold to Dr. H. C. Ray Chaudhary's theory of Neo-Mitra dynasty reigning in Magadha from the termination of the rule of the Kanwas in the middle of the first century B C. and regard Indragni Mitra and Brihaspati Mitra as the immediate predecessors of King Brihaspati Mitra who was the weaker rival and contemporary of Khārvela. [28]

इसके आधार पर खारवेल को ई॰ पू॰ प्रथम शताब्दी के

27. J. B. O, R. S. III Page 480 ff
28. Gaya & Bodhgaya Vol. II. PP 1934-74

अन्तिम मात्र का भ्रमात्मक नही हैं।

यवनराजदिमित:-शिलालेखकी आठवी पंक्तिमें "यवनराज 'दिमित-"का लिखा रहना पहले पहलडॉ०जायसवालने अनुमान किया था[२९]। इस अनुमानको प्रो०वनर्जी[३०] और प्टेनकोनो[३१] ने ग्रहण किया था। पर बाद में इतिहासकारो मे इसके बारेमे संदेह की सृष्टि हुई और डॉ० टानने इसे पूर्ण काल्पनिक प्रमाणित कर दिया,[३२]।

डॉ० वरुआ ने भी इसे सपूर्ण अस्वीकार किया है।[३३] उन्होने कहा है कि शिलालेखके जिस अशको 'यवनराज' पढ़ा गया है उसका पांचवा अक्षर 'ज' नहीं बल्कि 'त' है डा० दिनेश चन्द्र सरकार ने कहा है कि उस अशमे स्पष्ट "यवनराज" लिखा हुआ है पर "दिमित" शाह के लिए उनका सदेह है।[३४] अत यवनराज दिमित अथवा तिमितके बारेमे आलोचना करना अनावश्यक है।

हाथीगुफा-शिलालेखकी चौथो पक्तिमे "तिवस-सत" नामक एक शब्द पाया जाता है।

"पचमें च दात वसे नन्दराज-तिवस-सत ओघादितं
तन सुलिय वाटा पनाडिम् नगर पवेशयति"

इस तिवस सत शब्दको ऐतिहासिक आलोचको ने तरह तरह की अलोचनाएँ की है। विभिन्न ढंगसे इस शब्द का अर्थ किया है। प० भगवानलाल इन्द्रजी ने 'सत' का अर्थ 'सग्रह'

---

29. J. B. O- R. S.XIII pp. 221 & 228.
30. A. S. of India 1914-15
31. Acta Orientalia 1923. Page 27
32. Greeks in Bactria and India 457 ff.
33. Old Brahmi Inscriptions Page 18
34. Select Inscriptions Vol I Page 208.

लगाया था। He opened the three year y alms house of Nandraj[35] । प्रो० लुडार्स ने , उसका पाठ किये, अर्थ लगानेका ढंग बिल्कुल बदल दिया था[36] । उनके मतमे 'तिवस' का अर्थ है १०३ वर्ष । पहले पहल डा०जायसवाल और बनर्जी ने इसका अर्थ ३०० वर्ष लगाया था,[37] बादको इसे अस्वीकार करके प्रो० लुडार्स के मतको मानने लगे ।[38]

डा० जायसवालने सोचा था कि आलबरूनी की "तकिक् ईहिन्द" में वर्णित नन्द सम्वत्सरके अनुसार ही हाथीगुफा शिलालेखका "तिवससत" लिखा गया है ।[39] पार्जिटर की गणनाके अनुसार प्रथमनन्दने ई० पू० ४०२ में सिंहासनारोहन किया था। अगर यही हो तो मानना पड़ेगा कि ई०पू० २९९ (ई०पू ४०२-१०३ तिवससत=२९९) में ही नन्दराजाके द्वारा कलिंगमें निर्मित केनाल या नहरको पुन निर्मित किया गया था पर यह असम्भव सा जान पड़ता है । क्योंकि ईसाके पू० ३२२ से लेकर ई० पू० १८९ तक भारतपर मौर्योंका अखंड राजत्व चल रहा था ।

प्रो० राखालदास बनर्जी की भी भ्रान्त धारणा थी कि नन्दवंशके प्रथमराजा ने खारवेल के गद्दीपर बैठनेके १०८ से पहले ही (१०३+५) कलिंगमे केनाल का निर्माण किया था उनके मतमें नन्द-सम्वत्सर ई० पू० ४५८ से प्रारम्भ हुआ था अभी नहर का निर्माण काय ई०पू० ३५५ मे, (४५८-१०३) संपूर्ण हुआ था। परन्तु अध्यापक बनर्जी १०३ वर्षको नन्दराजा

---

35 International Oriental Congress Proceedings- Leiden 1881

36 Ep Ind Vol X App. No 1345 page 161

37 J B O, R S I-I 1917-425 ff

38 Ep Ind XX 77 ff

39. J B O. R S-XIII 238

तथा खारवेलके वीचका समय व्यवधान न मानकर नन्दवशीय राजत्वकालका एक समय व्यवधान मानते हैं ।

परन्तु अच्छी तरह विचार किया जाए तो अध्यापक बनर्जी की गणना नितान्त भ्रमपूर्ण मालूम पड़ती है । नन्द-सम्वत्सर के वारे में कोई ठोस प्रमाण विना पाए डा०जायसवाल अथवा बनर्जी के मतो को ग्रहण करना समुचित नही जान-पड़ता है।

अतएव 'तिवससत' को ३०० के रूपमें ग्रहण करना अधिक प्रामाणिक है । पौराणिक किम्वदतियो से भी खारवेल समसामयिक राजा सातकर्णी का नन्दराजत्व के ३०० वर्ष के वाद ही राजत्व करने की वात ज्ञात होती है । (मौर्यो का १३७ वर्ष + सुगो का ११२ + काण्वो का ४५=२९४ वर्ष)[४०] इस प्रमाण से नन्दवशके पतनके २९४ वर्ष वाद ही सातवाहन वंशका प्रारम्भ होना सूचित होता है । डा०रायचौधरी इससे पूरे सहमत हैं[४१] फिर अगर "तिवससत" को १०३ वर्ष माना जाए तो नन्दराजा के ९४ वर्ष के वाद ही खारवेलने सिंहासनारोहण किया था ! यह स्वीकार करना पडेगा(१०३—५=९८) ऐसी गणना से फिर दूसरे ढंग के विचार की सृष्टि होगी । क्योकि नन्दवंशके किसी भी वर्ष से तिवससत को १०३ वर्ष मानकर परिगणना करने पर जो समय निकलेगा उससे "कलिंग मगधके आधीन था" यही प्रमाणित होगा, अशोकीय शिलालेखो से यह प्रमाणित होगा कि उस समय तोषालि और सोमपा पर मौर्यो का शासन चल रहा था और कलिगमें किसी चक्रवर्त्तीका अभ्युदय नही हुआ था[४२] अत तिवससत को ३०० मानना चाहिए।

---

40 Age of Imperial Unity-Chapter on the Satavahanas by Dr. D. Sircar.

41 P H. A. I 229 ff

42 O. H. R. J. Vol III no 2 page 92

डॉ० सरकार, इसे ३०० वर्ष ही के अर्थ में लिखा जाता मानते हैं।[43] डॉ० जायसवाल ने पहले इसे ३०० माना था।[44] परन्तु बाद में पुष्यमित्र सुग को खारवेल का समसामयिक बतलाकर 'नदराजन' को शिशुवशीय राजा नन्दिवर्द्धनके समय स्वीकार किया था। पर शिशुनाग वशके राजा नन्द वर्द्धन का कभी उत्कल से सपर्क था यह हमें कही ज्ञात नही होता है। इसके अलावा हम देखते हैं कि शिलालेख पर स्पष्ट भाव से 'नदराजा' का नाम लिखा हुआ है। इसलिए उग्रसिंह 'महापद्मनद' जिन्होने नदवशकी स्थापना की और जो एकराट, सर्वक्षान्तकादि नाम से अपनेको विभूषित करते थे, उन्हें कलिंगविजयी के रूपमें स्वीकार किया जा सकता है।[45] इस (महापद्मनन्द) राजा का राजत्वकाल अवश्य ही ईसाके पूर्व ३२४ के पहले अथवा ३२४ तक पूरा हो चुका था, क्योंकि हमे मालूम है कि इसी वर्ष चन्द्रगुप्त मौर्यने सिंहासन आरोहण किया था। गणना करने पर भी हम खारवेलको, ईसाके पूर्व पहली शती के उत्तरार्द्ध मे कलिंगके एकछत्र शासकके रूपमें देखते हैं। और काव्य सम्बन्धी सौन्दर्य दृष्टि से नन्दराजा तथा खारवेल के रहने वाले समय व्यवधान को ही तिवससत अर्थात् ३०० वर्ष कहा गया है। अतएव ई०पू. प्रथम शताब्दी के अन्तिम भागमें कलिंग में खारवेलका राज चक्रवर्ती रहना सुनिश्चित है।

इस सिद्धान्त की उपेक्षा किये डॉ० कृष्णचन्द्र पाणिग्राहीने कहा है कि खारवेल की शिलालिपि पर अशोक को नदराजा

---

43 Age of Imperial Unity—Ch. XIII 216 ff
44 J. B. O. R. S. XIII 239 ff
45 P. H. A. I. 5th Ed. page 229 ff
46 P. H. A. I. page 233 ff C. H. India—N. N. Ghosh 114 ff

कहा गया है[47] उन्ही के प्रमाणो मे (१) नंद वंशीय राजालोग कृपण थे अत नहर खुदाई में अर्थव्यय करना असम्भव हुआ (२) चन्द्रगुप्त द्वारा प्रतिष्ठित वंश मौर्यवंश उस समय तक ख्याति नही पा सका था। क्योकि मौर्योको "पूर्वनन्दसुत" नाम से पुराणकार ने कहा है। अतः हाथीगुफा में अशोक को ही नन्दराजा अभिहित किया गया है।

डॉ॰ पाणिग्राही जी की तीसरी युक्ति यह है कि अशोकने अपनी तेरहवी शिलालिपि (R. E. XIII) में कहा है कि उन की विजयके पहले कलिंग पर और किसीने विजय नहीं की थी अत चूंकि पहले पहल अशोकने कलिंग पर विजय-प्राप्त की थी उन्हें नन्दराजा मान लेना चाहिए।

डा॰पाणिग्राहीजी की पहली युक्ति अनुसार हम इतना ही कह सकते है कि ग्रीक लेखकोने नन्दवशके अन्तिम राजाको ही अत्याचारी तथा कृपण कहा है। पर 'सर्वक्षत्रान्तक' 'एकराट्' महापद्मनन्द को कही पर कृपण नही कहा गया है पहले की आलोचना के अनुसार अगर महापद्मनन्द ही उत्कल के विजेता हुए होगे तो उन्हें नहरको खुदाई के लिए कृपण कहना या उनपर व्ययसंकोचका दोषारोपण करना समीचीन न होगा, विशाखदत्तके मुद्राराक्षस नाटकमें यह प्रमाणित होता है कि नन्दराजागण दानी तथा धार्मिक थे। अतएव ऐतिहासिक सत्य विनापाये इन धनशाली राजाओको कृपण कहना युक्ति संगत नही है।

डॉ॰ पाणिग्राही जी की दूसरी उक्ति भी वैसी भ्रमात्मक है। क्योकि चन्द्रगुप्त को मौर्य साम्राज्य का प्रतिष्ठाता और पिप्पलिवन का मौर्य वशधर निःसकोचसे स्वीकार किया जा सकता है। पुराणा मे चन्द्रगुप्त जी को अक्षत्रिय और पूर्वनन्द

47 J R. A. S XIX No 1, 25 ff

सुत नामसे वर्णित करने के पीछे गूढ रहस्य हो सकता है। ब्राह्मण कौटिल्य के साहचार्य से चन्द्रगुप्तने मगध पर अधिकार किया था। मगध के राजा बनने के बाद ब्राह्मण धर्म के प्रति अनुरक्त रहकर उन्होने जैन धर्म ग्रहण किया था। इसलिए ब्राह्मणो का खिन्न होना स्वाभाविक है। श्री हरित् कृष्णदेवने Indian Historical Quarterly में मौर्यो को पूर्वनन्दसुत और शूद्र नामसे वर्णित करने के कारणोकी विशद आलोचना की है।[४८]

मौर्योका नंदवशसे कोई नाता न था। बौद्ध ग्रन्थोमे उल्लेख किया गया है कि ई० पू० ६ वी शती से मौर्य लोग पिप्पलीवन में स्वाधीन भावसे बसे हुए थे। महापरिनिर्वाण सुत्तसे[४९] हमें ज्ञात होता है कि मौर्य लोग क्षत्रिय वशज थे और दिव्यावदान ने[५०], [५१] भी इस को स्वीकार किया है।

ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थो मे चन्द्रगुप्त तथा अशोकादिको मौर्य न कहनेका तात्पर्य यह नही है कि वे नदवश के राजा थे। बौद्ध ग्रन्थोमें स्पष्टत. उन्हें मौर्य कहा है। अत. डॉ०पाणिग्राही के मतको हम कदापि स्वीकार नही कर सकते। रुद्रदमन के गिर्नार शिलालेखोमें भी चन्द्रगुप्त और अशोकको मौर्य कहा गया है। इसलिए अशोकको नन्दराजा कहना नितान्त भित्तिहीन है।

अपने शिलालेखो में यह स्पष्टत: लिखा है कि उन्होने अपने सिहासनारोहणके आठव वर्षमे कलिग पर अधिकार किया

---

48 I. H. Q. 1932 Vol. VIII No. 3 page 466 ff

४९ अथ पिपलिवनिया मोरिया कोत्ति नर कान मल्लान यूत पाहेसुं. भगवाय खरियो भमपि खरिया।

५० त्व नाँगिनी अहु राजा, छत्रिया मूर्द्धाभिषिक्त कथ मया सार्द्ध समागमो भविष्यति।

५१ देवि अहं क्षत्रिय; कथ पलाडु परिभक्ष्यामि।

था और उसके पहले कलिंग अविजित था (Previously unconquered) परन्तु निःसदेह भावसे यह स्वीकार किया गया है कि कलिंग नन्दराजा द्वारा पहले से अधिकृत था। अत. प्रश्न उठ सकता है कि अशोकने कलिंग को अविजित क्यों कहा ? संभवत इसीलिए कि उनके पहले किसी मौर्यने उसपर अधिकार नही किया था। नन्दवंशीय राजत्व खतम होते होते कलिंगने अपने आपको स्वतन्त्र कर दिया था। इस स्वाधीन कलिंग पर ई० पू० २६१ में अशोक ने चढ़ाई की थी। पर कलिंग पर विजय प्राप्त करना सहज-साध्य नही था । तेरहवें शिलालेख पर अशोकने कलिंगयुद्धका भयावह तथा मर्मान्तिक चित्रण किया है।[52]अत अवश्य उन्होंने स्वाधीनता प्रिय कलिंगके अधिवासियो को अपने देशमें मिलाकर शान्ति तथा तृप्ति पायी होगी। अविजित कलिंग पर विजय प्राप्त करनेकी उक्तिमें अशोकका साम्राज्यवादी अहं विद्यमान है। इसका पूर्ण प्रमाण हमें उसके द्वादश शिलालेख से प्राप्त होता है। नन्दराजा के द्वारा कलिंग को अधिकृत होने की वातसे अशोक पूर्ण भावसे परिचित रहते हुए भी कलिंगको 'अजेय' बताकर उन्होने अपनी ही अहंमका पराक्रम तथा आत्मगौरव का ही परिचय दिया है । अत' डा० पाणिग्राही का इसे ज्यादा महत्व देना उचित नही हुआ है। 'तिवससत'को १०३ वर्ष प्रमाणित करनेके लिए अशोक को नन्दराजा के समयमें ग्रहण करना सही नहीं है ।

डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार ने कहा है कि संभवत. हाथी गुफाकी शिलालिपि प्राचीनता की दृष्टिसे नानाघाट शिलालिपि और अवश्य ही वेसनगर की शिलालिपि के वाद की है। इसमें कोई सदेह करनेकी वात नही है[54] रमाप्रसादचन्दने भी ब्राह्मी

---

52 Corpus Inscriptionum Indicarum I
54 M. A. S. I. No 1

लिपिके क्रमिक विकासपर अनुसन्धानकर कहा है कि अगर अशोकको शिलालिपिको ब्राह्मी लिपिका पहला पर्याय मानाजाय तो वेसनगर लिपिको पचम अन्तिम और हाथीगुफा लिपिको षष्ट अन्तिमके रूपमें स्वीकार करना समुचित होगा। इसी समय नानाघाट और भरहुत स्तूपके पूर्वपार्श्वके तोरणपर क्रमश: नामनिका और धनभूति की लिपि लिखी गयी थी। इन अक्षरोसे अशोक लिपिका साधारण सादृश्य दीख पड़ता है। अत. हाथीगुफा की शिलालिपियोको ई० पू० पहली शताब्दीका मानना भ्रमात्मक नही है। डॉ० सरकारने स्पष्टत. स्वीकार किया है कि नानाघाट शिलालिपि का शिलालेख ईसाके पूर्व प्रथम शतीके शेषार्द्ध का है।[55]

फर्गुसन और वर्गेस[56] ने नासिक गुफाओंको ई०पू० प्रथम शताब्दीके शेषार्द्धका माना है। सर जॉन मार्शलने भी यह स्वीकार किया है कि [57] आंध्र सात वाहन वशके दूसरे राजा कृष्ण के समय नासिकका एक क्षुद्र विहार चैत्यके रूपमें पुनर्गठित हुआ था। अगर यह मत सच है तो कृष्ण ने ई० पू० पहली शतीके अन्तिम भागमें राजत्व किया था। अत उनके उत्तराधिकारी सातकर्णी और सातकर्णी की रानी नामनिका के नानघाट के शिलालेख और परवर्ती कालके हैं। यह डॉ० चौधरी के मतसे पूरा खप जाता है और डॉ०पाणिग्राहीका मत प्रचेष्टा मात्र रह जाती है। अतएव खारवेल कभी ई० पू० दूसरी नही बल्कि पहली शताब्दी के अन्तिम भागके ही रहे।

महापद्मनन्द वशके प्रतिष्ठाताके रूपमें 'ऐकराट्' 'सर्वक्षत्रा-

---

55 Select Inscriptions,

56 Cave Temples of India by Messrs Fergusson and Burgess,

57 C. H. India Vol. I 636 ff.

न्तक'उपाधिधारी उग्रसेनने अस्मक, वितिहोत्र, कुरुपांचाल आदि राज्यपर अधिकार स्थापन करते समय कलिंग पर विजयप्राप्त की थी। उनकी सैन्यवाहिनी को रण दुर्दुन्नि ने समस्त भारत वर्षमें आतंक की सृष्टि की थी, नही तो सर्वक्षत्रांतक उपाधि उन्हें पुराणकारों से न मिली होती। इसलिए तो स्वीकार करना पड़ता है कि हाथीगुफा के नन्दराजा स्वयं महापद्मनन्द हैं। महापद्मनन्द से "तिवसशत" को ३०० वर्ष मानकर गणना करने पर हम ई. पू. प्रथम शतीमें उपनीत होते हैं। अत. यही खारवेल का प्रकृत समय है।

५. खारवेल का शासन और साम्राज्य।

कलिङ्गाधिप खारवेलके जीवन वृतान्तका एकमात्र आधार उनका खुदाया हुआ हाथीगुफाका शिलालेख है। उसीके आधार से ज्ञात होता है कि खारवेल एक महान् तेजस्वी और प्रतापी राजा थे। बलवान होनेके साथ वह देखने में बहुत ही सुन्दर थे। शिलालेखमें उनके शासनकालकी घटनाओका वर्णन मिलता है। उनसे पता चलता है कि खारवेल सोलह वर्ष की आयु में युवराज पद में अभिषिक्त हुए। उस समय वे विद्या अध्ययन समाप्त कर चुके थे। सोलह वर्ष की उम्र में उनके शरीर की गठन इतनी सुन्दर लगती थी कि उससे भविष्यमें उनके वीर योद्धा होने का परिचय मिलता था। इससे पता चलता है कि वे आत्मसंयमी और सच्चरित्र थे। चाणक्यके अर्थशास्त्रानुसार उस समय के राजाओ को आत्मसयमी एव सच्चरित्र होना चाहिये था।[1]

खारवेल २४ वर्षकी आयुमें कलिगके सिंहासन पर सुशोभित हुआ। और सिर्फ तेरह वर्ष ही राजत्व किया[2]। इस अल्प समय में कलिगके उत्तर और दक्षिण में जितने राज्य थे सभीको उसने

---

१ विद्या विनीत राजा ही प्रजान् दिनयेरत अनन्याग प्रर्थविग भूसते स्र्वोभूतहितेरतः K. A.

2 History of Orissa Dr.H.K. Mahatab and Eaely History of India, N. N. Ghosh.

जीत लिया था।[3] अशोकके भयावह आक्रमणसे समस्त कलिंग प्रायः नष्ट भ्रष्ट सा हो चुका था। फिर भी कलिंग वासियोके हृदयसे स्वतन्त्रताकी स्वाभिमानी आत्मा क्षीण नहीहुई थी। अशोक की मृत्यूके पश्चात् उस अल्प समयमें कलिंग वासियोको निश्चय ही स्वतंत्रता मिली। उस स्वाधीनता प्राप्तिके २०० वर्षके बीच मेंही कलिंगमें फिर एक शक्तिशाली राज्य स्थापित हुआ, जो कि मगधसे बदला लेनाचाहत था। फलतःमगधको हराकर इतने अल्प समय में खारवेल ने समस्त उत्तर और दक्षिण भारतमें अपनी विजय पताका फहरायी, यह आश्चर्यमय लगता है! खारवेल की सैन्य सख्या कितनी थी इस विषयमें जानकारी प्राप्त नही होसकी और वही उसी समयके शिलालेखोमें ही कुछवर्णन मिलता है।

हाथीगुफा शिलालेख के चतर्थ लाइन से ज्ञात होता है कि खारवेल के राज्यकाल के द्वितीय वर्ग में उसने सैन्यका प्रस्थान पश्चिमी दीप को किया था। इसी वर्ष से उनके साम्राज्य स्थापना की चेष्टा आरम्भ हुई। पश्चिमी दीप को प्रस्थान करने से पूर्व निश्चय ही खारवेल ने अपनी सेना को सुशक्त शाली बनाया होगा[४] और यही दुजयं सेना लेकर खारवेल ने सातकर्णी के विरुद्ध में यात्रा शुरू की। यह सातकर्णी राजा आन्ध्र के सातवाहन वंशका तृतीय राजा था।[५]

इस युद्ध का क्या कारण था, यह विस्मृतिके गर्भ में ही छुपा रहगया है। शायद ऐसा होसकता है कि खारवेल साम्राज्य स्थापित करने की अकाँक्षामें सातकर्णी ने कुछ बाधाएँ डाली हो। और उससे रुष्ट होकर खारवेल ने उन पर आक्रमण-

3 Glimpses of Kalinga History-M. N. Das P.-60
४ अपतीहृत सक वाहन दलो
History of Orissa. vol. II Ed.by Dr. N. K. Sahu page 327

किया हो। और इस तरह पराजित होकर सातकिर्ण ने उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया हो।

सातकर्णी राजा को हराने के पश्चात् खारवेल की सेना कलिंग न लौटकर दक्षिणमे कृष्णानदीके तटपर बसे हुए अशिक नगर पर जा पहुंची[६]। पुराण के अनुसार ज्ञात होता है कि उस समय कृष्णा नदी तट के जो राजा थे, वे बडे ही पराक्रमी और शूरवीर थे। फिर भी उनकी शक्ति खारवेल का मुकाबला करने से हार मान गई। अशिक राज्य पर आधिपत्य जमा खारवेल सैन्य सहित एक वर्ष तक वही रहा तब लौटा!

उसके बाद खारवेल तीसरे वर्ष कही भी नही गया। हाथी गुफा शिलालेख से ज्ञात होता है कि उस वर्ष उसने अपनी राजधानी में बहुत आनन्द उत्सव मनाये और कही नही गया। किन्तु चतुर्थ वर्ष के शुरू होती ही खारवेल ने अपनी सेना सहित विन्ध्याचल की ओर प्रस्थान किया। जिससे सारा विन्ध्याचल निनादित हो उठा। अरकडपुरमें जो विद्याधरोको वास थे, उन पर अधिकार करके खारवेल ने रथिक और भोजक लोगों पर आक्रमण शुरू किया। और इन सभी को परास्त करके अपने आधीन कर लिया[७]। डॉ० जायसवाल ने हाथीगुफा लेखके आधारसे बताया है कि इसी वर्ष खारवेल ने 'विद्याधरों के आवास' (The Abode of Vidya dharas) का जीर्णोद्धार कराया था।

अपने राजत्वके पञ्चम वर्षमें खारवेलने अपनी राजधानी की शोभा एव समृद्धि बढानेके लिये तनसुलिय-वाट नहर को

६– जायसवाल और प्रोफेसर राखालदास बनर्जी ने इस अशिक नगरको भूलसे मुशिक नगर पढा और उसीको वे लिखते रहे हैं।

७– रथिक (राष्ट्रिक) और भोजक-अशोक के शिलालेखों में उनका उल्लेख है।

घटाकर लाये, जिसे नन्दराजा ने बनवाया था। राजत्व के छठवें वर्षमें वह अपनी प्रजा पर सदय हुये थे। इस वर्ष उन्होंने पौर और जानपद जननंनोंको विशेष अधिकार प्रदान किये थे। इस से स्पष्ट है कि खारवेल यद्यपि एक सम्पूर्ण स्वत्वाधिकारी सम्राट् थे, फिर भी उनकी प्रजाको राजकीय प्रबंधमें समुचित अधिकार प्राप्त था। इसी वर्ष खारवेलने दुखीजनोंके दुखोंका विमोचन करने के लिए उल्लेखनीय प्रयास किया था। अहिंसा धर्मका प्रकाश उनके जीवन में होना स्वाभाविक था

अपने राजत्वके सप्तम् वर्षमें खारवेल अपनी आयुके इकतीस वर्ष पूर्ण कर चुके थे। उनके शिलालेख से ध्वनित होता है कि इसी वर्षमें उनका विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ था। उनकी महारानी श्रोड़ीसाके निकटवर्ती प्रदेश वज्रके राजवंश की राजकुमारी थीं। आठवें वर्षमें उन्होंने मगध पर आक्रमण किया और वह ससैन्य गोरथगिरि (बाराबर हिल्स) तक पहुंच गये थे। जैन 'महापुराण' में भरत चक्रवर्ती के दिग्विजय प्रसंग में भी गोरथगिरिका उल्लेख मिलता है। सम्राट् भरत भी वहां सेना लेकर पहुंचे थे। उनके प्रभावसे जिस प्रकार मागधकुमार देव स्वतः शरणमें आया, उसी तरह खारवेलका शौर्यभी अपना प्रभाव दिखा रहा था। गोरथगिरि विजय और राजगृहके घेरे की शौर्यवार्ता सुनते ही यवनराज डेमित्रियस (Demetruis) के छक्के छूट गये। खारवेल को आया देखकर वह अपना लाव-लश्कर लेकर-मथुराछोड़कर भाग गया। कितना महान् पराक्रम था खारवेलका। उनका देशप्रेम और भुजविक्रम निस्सन्देह अद्वितीय था।

राजधानीको लौटकर खारवेलने अपने राज्यकालके ९वें वर्षमें महान् उत्सव व दानपुण्य किया। उन्होंने 'कल्पतरु' बनाकर सभीको किमिच्छिक दान दिया। घोड़े, हाथी, रथ आदि भी योद्धाओंको भेंट किये। ब्राह्मणों को भी दान दिया। और

प्राचीनदीके दोनो तटो पर 'विजयप्रसाद' बनवाकर अपनी दिग्विजय को चिरस्थायी बना दिया। दसवें वर्षमें उन्होने अपने सैन्यको पुनः उत्तर भारतकी ओर भेजा था एवं ग्यारहवें वर्षमें उन्होंने मगध पर आक्रमण किया था जिससे मगधवासियो में आतङ्क छा गया था। यह आक्रमण एक तरह से अशोक के कलिंग आक्रमणके प्रतिशोध रूपमें था। मगधनरेश वृहस्पतिमित्र खारवेलके पैरोमें नतमस्तक हुए थे। उन्होने अङ्ग और मगधकी मूल्यवान भेंट लेकर राजधानी को प्रयाण किया था। इस भेंटमें कलिंगके राजचिन्ह और कलिंग जिन (ऋषभदेव) की प्राचीन मूर्ति भी थी, जिसको नन्दराज मगध लेगया था। खारवेल ने उस अतिशय पूर्ण मूर्तिको कलिंग वापस लाकर बडे उत्सव से विराजमान किया था। उस घटनाकी स्मृतिमे उन्होने विजय स्तंभ भी बनवाया था और खूब उत्सव मनाया था, जिससे उन्होंने अपनी प्रजाके हृदयको मोह लिया था।

इसीवर्ष खारवेलके प्रतापकी आन मानकर दक्षिणके पाण्डय-नरेशने उनका सत्कार किया और हाथी आदि की मूल्यमय भेंट उनकी सेवामें प्रेषित की थी। इसप्रकार अपने बारहवर्षके राजत्वकालमें वह अपने साम्राज्यका विस्तार कर लेते हैं और उत्तर एवं दक्षिण भारतके बडे बडे नरेशों को परास्त करके अपना आतङ्क चतुर्दिकमें व्याप्त कर देते हैं। निस्सदेह वह सार्थक रूपमें कलिंगके चक्रवर्ती सम्राट् सिद्ध हो जाते हैं।

किन्तु अपने राजत्वकालके १३ वें वर्ष मे सम्राट् खारवेल राजलिप्सामें विरक्त होकर धर्मसाधना की ओर झुकते हैं। कुमारी पर्वत पर जहां भ० महावीरने धर्मोपदेश दिया था, वह जिनमंदिर बनवाते हैं और अर्हंत् निषधिका का उद्धार करते हैं। एक श्रावकके व्रतोका पालन करके शरीर और आत्माके भेदको लक्ष्य करके आत्मोन्नति करने में लग जाते है। उनकी

धर्माराधना का विवरण आगेके अध्याय में लिखा है ।

हाथीगुफा-शिलालेख में ठीक ही खारवेल को क्षेमराज, वर्द्धय-राज (राज्यवर्द्धन्), भिक्षुराज और धर्मराजके प्रशंसनीय विरुदोसे अलंकृत किया गया है। निस्संदेह उन्होंने प्रजाकी क्षेमकुशलका पूरा ध्यान रक्खा था। उन्होंने ऐहिक राज्यका संवर्द्धन किया वहाँ ही आध्यात्मिक राज्यकी भी संवृद्धि की! वह एक आदर्श और महान् सम्राट् थे।

६. खारवेल और जैनधर्म

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि खारवेलके राजत्वकालसे सैकडो वर्षों पहले कलिंग दक्षिण भारतमे जैनधर्मका केन्द्रस्थल था। कलिंगमें ब्राह्मण्य धर्मके साथ२ समभावसे जैनधर्म प्रगति करता आ रहा था। इस प्रगतिके परिणाम स्वरूप ही वहां उसकी प्राधान्य प्रतिष्ठा हुई थी। यही कारण है कि जैनधर्मावलम्बीयोके इष्टदेव को कलिंग "जिन" रूपमें सारे ही कलिंग राष्ट्रने माना था। इस मान्यतामें जराभी अतिशयोक्ति नहीं है। हाथीगुफा शिलालेखमें यह स्पष्ट लिखा है कि ई० पू० चतुर्थ शताब्दीमें महापद्मनन्दने (नन्दराज) जब कलिंग पर आक्रमण किया और उसपर अधिकार जमा लिया, तब वह अपनी विजयके प्रतीकरूपमें 'कलिंग जिनको' पाटलिपुत्र ले गये थे। अपनी कलिंग विजयके उपलक्षमें महापद्म धन दौलत आदि कुछ भी न ले जाकर केवल जिनमूर्ति ले गये इसका आखिर क्या कारण हो सकता है? सबके मनमें ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है। किंतु इसका कारण तो स्पष्ट है। शिलालेखीय साक्षीसे हमें ज्ञातहै कि यह जिनमूर्ति ही कलिंगके अधिवासियो की आराध्य देवता, इतलिए विजयी महापद्मका विजय गर्वसे उत्फुल्ल होकर कलिंग जिनकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। जैनधर्मका कलिंगमें प्राधान्य विस्तार होनेके कारण जिनमूर्तिका प्रभाव भी प्रत्येक कलिंग वासीके ऊपर कम या ज्यादा पडा ही होगा। अधिकन्तु महापद्म स्वय ही जैनधर्मके

उपासक थे। अन्यथा कलिंग अधिकृत करने के उपलक्षमें महापद्मने समग्र जातिके, देशके तथा स्वय अपने इष्टदेवको सुदूर पाटलीपुत्र लेजाने का प्रयास नहीं किया होता। यदि वह जैन धर्मावलम्बी न होते तो वह जिनमूर्तिको नष्ट कर देते। परन्तु हाथीगुफा शिलालेखसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि खारवेलके मगधपर अधिकार करने के समय तक अर्थात् ३०० वर्षोंके दीर्घ-कालमें उपरोक्त मूर्ति पाटलीपुत्रमें सुरक्षित रही थी।

नन्दराजाके कलिग पर अधिकार करनेके बाद भी जैनधर्म उत्कलसे अन्तर्हित नहीं हुआ था। और नहीं ही उत्कलीयोंके द्वारा अवहेलित हुआ था। बल्कि विभिन्न राजवशोकी पृष्ट-पोषकताके कारण भ० महावीर जिनेन्द्रकी शान्तिपूर्ण और मैत्रीमय वाणी कलिगके कोने-कोनेमें प्रचारित हुई थी। यह एक तथ्य है कि अशोकके समयमें और उसके बादमें भी कलिग जैनधर्मका प्रमुख केन्द्रस्थल था। 'चेति' राजवंशके साहचर्य और सहानभूतिमई सरक्षणसे इस धर्मके संप्रसारणमें विशेष साहाय्य मिला था। जब उत्कल के इतिहास में महामेघबाहन कलिगाधिपति खारवेलका आविर्भाव हुआ तब जैनधर्मकी सिप्र अग्रगतिमें प्रतिरोध खड़ा करना सभव ही न था। खरवेल स्वयं जैनधर्मके उपासक और प्रधान पृष्ठपोषक थे। हाथीगुंफा शिला-लिपिसे यह प्रमाणित होता है कि नन्दराज कलिग विजयके बाद जिस कलिंग जिनको यहां से लेगये थे, खारवेल उसी मूर्तिको अपने राजत्वकालके द्वादशवें वर्षमें अग और मगध पर अधिकार करके कलिंगमे वापस लौटाकर लाये थे। इस सुअवसर पर शोभायात्रा निकालने की तैयारी की थी। खारवेलकी विराट सैन्यवाहिनी और कलिगके असंख्य नागरिकोने उस महोत्सवमें योगदान दिया था और कलिंग सम्राज्यके सम्राट् ही स्वय उसके समर्थक एवं उत्सवको सुन्दर रूपसे सपन्न करने के लिये

यत्नवान हुये थे। संगीत और वाद्रिओके ध्वनि समरोहमें कलिंग जिनको पुन. कलिंगमें स्थापित किया गया। हाथीगुफा शिलालिपिसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि खारवेल और उसके परिवारके सभी लोग जैनधर्मावलम्वी थे। उनकी भक्ति और स्नेह कलिङ्ग जिनके साथ ओतप्रोत ही था।

किन्तु इस प्रसंगमें याद रखने की बात यह भी है कि जैन धर्म कलिंग मात्रका धर्म न था, बलिक ई० पू० ६टी शताब्दि से ही भारतके प्रयेत्क प्रातमें हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी मिलजुल कर रह रहे थे। उत्कलमें हिन्दू, लोगो की रीतिनीति का प्रभाव जैनधर्मके ऊपर पडा प्रतीत होता है किन्तु जैनधर्म की आध्यात्मिक शृखला, कठोर नियम पालन और तीर्थंकरोको महनीयता और चरित्र विशिष्टता आदि विशेष गुणोके द्वारा उत्कलीय प्रजाजन अनुप्राणित हुए ही थे। इसमे अचरज करने का कोई कारण नही है। यह हमारा व्यक्तिगत वैशिष्ट्य और देशगत आचार हैं। तीर्थंकरो के विराट व्यक्तित्व और त्यागके सामने कलिङ्गवासियो का स्वत प्रणत होना स्वाभाविक ही था। खारवेलके समयमें खडगिरि और उदयगिरिमें जैन साधुओं के लिये सैकडो गुफायें निर्मित हुई थी। खारवेल स्वय जैन थे इस कारण जैन साधुओके प्रति उनकी व्यक्तिगत अनुरक्ति थी। हाथीगुफा शिलालेखके प्रारभमे ही चक्रवर्ती सम्राट् खारवेलने जैनधर्मके नमस्कार मूलमत्रको लक्ष्य करके अपनी भक्ति प्रदर्शितकी है। शिलालिपि की प्रथम पक्ति में लिखा है कि:—
'नमो अरहतान' 'नमो सवसिधान' [1]

---

1. "Let the head bend low in obeisance to arhats, the Exalted Ones.
Let the head bend low (also) in obeisance to all Siddhas, the perfect Saints."

जैन शास्त्रानुसार पाच नमस्कार मत्र उच्चारण करने की प्रथाका समर्थन पडित भगवानलाल इन्द्रजी और राजेन्द्रलाल मित्रजी भी करते हैं। जैन सम्राट खारवेलने शास्त्रानुमोदित पन्थके अनुसार प्रशस्तिके प्रारभमे अर्हत् और सिद्ध परमेष्टियो के प्रति अपनी नम्र विनय प्रदर्शित की है।[२]

खारवेलकी इस शिलालिपिमे उनके चिन्ह भी हैं। उसके दोनो पार्श्वोमे चार सकेत चिन्ह है। वाम पार्श्वमें दो और दाहिनी तरफ दो सकेत चिन्ह हैं। प्रथम सकेत चिन्ह शिलालिपि की २५वी प क्तिके वाई ओर है। चौथा संकेत चिन्ह सातवी पक्ति के दाहिने पार्श्वमे है। शिलालिपिका प्रारंभ और समाप्ति निर्देश के लिये ये दोनो सकेत दिये गये हैं। द्वितीय सकेत चिन्ह प्रथम सकेत चिन्हके निम्न भागमे और तृतीय सकेत चिन्ह प्रथम और द्वितीय पंक्तिके दक्षिण पार्श्वमें है। डा० जायसवाल का कहना था कि, तृतीय सकेत चिन्ह ठीक खारवेलके नामके बाद है, परन्तु यह ठीक नही।

किन्तु प्रश्न यह है कि आखिर ये सकेत चिन्ह हैं क्या? जैनकला पद्धतिके मतानुसार इनमें प्रथम सकेत चिन्हको जैन लोग "वर्द्धमंगल" कहते है।[3] द्वितीय संकेत चिन्ह 'स्वस्तिक है। तृतीय सकेत चिन्हका नाम "नदिपद" है। कान्हेरि निकटस्थ 'पदण' पर्वतकी एक शिलालिपिमे उस सकेतको "नदिपद" कहा गया है।[४] हाथीगुफाका ४था चिन्ह 'रुखचेतिय' या 'वृक्षचैत्य'

---

२. नमो अरिहन्ताणम्, नमो सिद्धाणम्;
नमो आयरियाणम्, नमो उवझायाणम्;
नमो लोए सव्व-साहूणम्।

3. Dr. A. K Coomarswamy ने जिसे 'Powder-box' कहा है।

4 J. B. B. R. A. S. XV Page 320

के नामसे अभिहित किया जाता है।

'वर्द्धमगल' एक मागलिक चिन्ह रूपमें जूनागढकी जैनगुफा के द्वारदेशमें खोदा हुआ है। साची स्तूपके तोरणमें भी यही चिन्ह पाया जाता है। पश्चिम भारतका बौद्ध गुफाओ की शिलालिपियोमें भी 'वर्द्धमगल' चिन्ह पाया जाता है।[5] जूनागढमें अष्टमगल चिन्ह भी खोदे हुए मिलते है। इन्द्रजी कहते है कि स्वस्तिक, दर्पण, कलस, भद्रासन, मत्स्य, पुष्पमाल्य अंकुश और वर्द्धमंगल ये अष्टमगल चिन्ह है। आजकल जैन भिक्षुओका भिक्षापात्र ठीक वर्द्धमंगल चिन्ह सा है। हाथीगुफा में वर्द्धमंगलकी आवश्यकता क्या थी ? यह कहना असभव है। ऐतिहासिकगण इसे त्रिशूल, त्रिरत्न या वत्स रूपमें भी वतलाते है। प्राचीन भारतकी मुद्राओमें जो चिन्ह पाया जाता है वर्द्धमगल उसमें अन्यतम है। हाथीगुफा शिलालेखके अन्य तीन चिन्ह भी प्राचीन मुद्राओमें पाये जाते है।

हाथीगुफा शिलालिपिके आद्य अन्तका निर्णय प्रथम और चतुर्थ चिन्हसे ही होता है।

स्वस्तिक और नदिपदका इतिहास जो भी हो, परतु हाथीगुफा शिलालिपिमें उनका व्यवहार यथाक्रम स्वस्ति और मगल के प्रतीक रूपमें हुआ है। 'मगलसुत्त' नामक पालिग्रन्थमें उस का प्रमाण मिलता है। हरिद्रकृष्णदेव कहते है कि शास्त्रोक्त ॐ शब्दके रूपकके लिये स्वस्तिक और नदिपदको आर्योंने व्यवहार किया है। वही नियम वौद्ध और जैनो के यहा भी प्रचलित है। वेदोमें ॐ मगल सूचक है।

हाथीगुफाकी शिलालिपि जैन सम्राट खारवेल के निर्देशमें लिखी गयी, इसलिए शिलालिपिमें जैन शास्त्रके मागलिक चिन्ह रहना सर्वथा स्वाभाविक है। सम्राट खारवेलको जैनधर्मावलम्वी

---

5. Acts du Sixieme Congris III 137

के रूपमें प्रमाणित करने के लिये इन चिन्होको प्रमाणके रूपमें ग्रहण किया जा सकता है।

शिलालेख की चौदहवी पंक्ति में उल्लेख है कि.—
"तेरसमे च वसे सुपवत-विजयचको कुमारी पवंते ग्ररहतो परिनिवासे ताहिकाय निसीदीयाय राजभतकेहि, राज-भातिह राजनीतिहि राजपुतेहि । राज महिषि खारवेल सिरिना सतदशलेणसतं कारापितं ।[6]

जैनोकी सुविधाके लिये खारवेल और उनके परिवार सम्बन्धीजनोंके प्रयाससे ११७ गुहा तैयार हुआ था।

यद्यपि खारवेल जैन थे, फिर भी उनकी सहानुभूति केवल जैनों तक ही सीमित न थी। उन्होने हिन्दू देवदेवियों के लिये भी एकाधिक मंदिर निर्माण किया था, इसमें कोई संदेह नही।
"सुकता- समण सुविहितान, च सतदिसनं यतिनं, तापस ईसिनं लेणं कारयति, ग्ररहत निसदीय समीपे पभारे वरकार समुथापिणहि ग्रनेक योजना हताह पनति-साहि-सतसरसाचि सिलाहि यम्बनित् चेचियानि च कारापयति। पटलिक रतिरे च बेडुरिम गभे थम्भे पडियापयति।"

"पनतरीय सतस हरेहि वेतुरिय नीलमोक्ष चे चयति-ग्रय सतिकं नेरिय उपदयति ।'

(हाथीगुफा शिलापिकी पन्द्रह पक्ति)

इसे पढनेसे मालूम होता है कि अपने राजत्वकालके तेरहवीं

---

6. And in the 13th year on the Kumari hill, in the well known realm of victory. 117 Caves were caused to be made by his Graceful Majesty Khāravela, by his relatives, by his brothers, by the royal servants, for the residing Arhats desiring to rest their bodies

वर्षमें खारवेलने जैन सन्यासियोके लिये कुमारीगिरि पर ११७ गुफायें तैयार कराई थी, और साथ साथ दूसरे प्रसिद्धधर्म के साधु और सन्यासियोके लिये भी (सकल समग-सुविहिता) एक दूसरी गुफा निर्माण किया था। फिर भी अन्यान्य मुनि ऋषि और श्रमणो के लिए सभी प्रबन्ध किया था। यह बात शिलालिपिमें अङ्कित है। (शत विसाकम् यदिकम् तापस इसिकम् लेयेन कारयति)। यहा यति, ऋषि और साधुओ का उल्लेख करने से हिन्दुओ के वर्णाश्रम धर्मगत वानप्रस्थ अवस्था की सूचना अनुमानित होती है*। अशोककी शिलालिपि आदि में ब्राह्मण धर्मके योगी ऋषिओ से पृथक प्रगट करने के लिए जैन, आजीवक और बौद्धोका श्रमण नामसे अभिहित किया गया है। लेकिन खारवेलने ब्राह्मण सन्यासियो को यती, ऋषि और तापस नामसे अभिहित किया है। बौद्ध और आजीवक लोगो को हाथीगुफा शिलालेखकी वर्णनामे स्थान नही दिया गया है। पर इसका कारण निर्णय करना असभव है।

शिलालेख की सोलहवी पक्तिमें खारवेलकी धर्मनीति विश्लेषित हुई है। इस धर्मनीतिको विशद आलोचनाके लिए शिलालेखका प्रोक्त भाग पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

"सेरा वास वधराज वास इवरावास धमरावास पसते सुनते अनुभवतो कलालाण गुणविसेस कुशलो सवपाषांड पूओको सव-देवायतन-सकार-कारको अपतिहत चकवाहनबलो चकधरो गुत चको पवति चको राजिसि वसुकुल विनिसितो महाविजयो राजा खारवेल सिरि।"

(हाथीगुंफा शिलालेख– १६ वी पक्ति)

समालोचनाके लिए जिसका सस्कृत अनुवाद नीचे दियागया है

---

*– जैन श्रमणो में भी यति, ऋषि और साधुओ का वर्गीकरण मिलता है। —स०

"क्षेमराजः सः वर्द्धराजः स. इन्द्रराजः सः धर्मराज पश्यन्त श्रण्वननुभवन कल्याणाणि गुणविशेष कुशल सर्व पापंड पूजक सर्व-देवायतन सस्कार-कारक अप्रतिहत चक्रवाह बल. चक्रधरा गुप्तचक्र प्रवर्तचक्रः राजर्षि वसुकुल विनर्गतो महाविजयो राजा खारवेल श्रो ।"

इस उद्धृत प्रकरण मे खारवेलकी चारित्रक महनीयताका परिचय भी दिया गया है। वह क्षमाशील, धर्म परिवर्द्धन के आधार और इन्द्रके समान न्यायविशारद थे। धार्मिक निष्ठाके केन्द्र खारवेल आध्यात्मिकता_विकासके लिये सदाहित और कल्याण सावनमें लिप्त थे। उन्हें "सर्व पापड पूजक" के नामसे अभिहित किया गया है। यहा इस उल्लेखमें अशोकके धर्मानुशीलन वृतिकी छायासो मालूम होती है। अशोक की तरह खारवेल भी सवही धर्मोको समान दृष्टिसे देखते थे। केवल इतना ही नही वल्कि जैन होते हुए भी वह अन्य धर्मोके प्रति सम्मान प्रदर्शन करते थे। शिलालिपिका "सवव देवायतन सस्कार कारक" लेख इस मतको पुष्ट करता है। इसके साथ ही अपने राजत्वकाल में निस्सदेह खारवेल कलिंगकी श्री वृद्धि के लिए भी खुले हाथसे धन व्यय करते थे। यह विषय शिलालिपिसे पाया जाता है। सिर्फ जैनोके लिए आत्मनियोग नही करते थे, वल्कि साम्राज्य की सभी प्रजाओंके सुख साधन के लिए काम करते थे। सामाजिक आचार-विचारमें कोई कड़ी नीति नही थी।

दुर्भाग्यसे समयकी प्रतिकूलताके कारण उस समयके मंदिर अब नही है, नही तो खारवेलकी महानताके वारेमें वे गवाही देते और उनके धर्मभावको साक्षात् कर दिखाते!

सचमुच खारवेल जैनधर्मके उज्वल आलोक स्तम्भ थे। उनकी पृष्ठपोषकतासे जैनधर्म अपनी स्थितिमें अटल था।

इसलिए शिलालिपि में उनको "चकधरो" (चक्रधर) नामसे अभिहित किया गया है। बौद्ध और जैन शास्त्रमें चक्रको 'धर्म' अर्थमें व्यावहार किया गया है। परन्तु यहांपर सम्राट खारवेल को चक्रधर नामसे अभिहित करने का यह मतलब है कि जैन धर्ममे उनकी जगह बहुत ऊची थी। सिर्फ उतना ही नही उन को गुप्तचक्रकी पदवी भी दी गई है।

खारवेलको जैन प्रमाणित करनेके लिए हाथीगुफा शिलालिपि मे और भी बहुत प्रमाण है। शिलालिपिसे यह भी मालूम होता है कि राजत्वके आठवे सालमे वह यवनराजको युद्धमें मुहतोड़ जवाब देनेके लिए मथुरा तक गये थे। मथुरामें उन्होने ब्राह्मण, जैन श्रमण, राजभृत्य और वहां के अधिवासियो को भोजमें आप्यायित किया था। मथुरासे लौटने के बाद कलिगमें भी इसी तरह एक भोजका आयोजन हुआ था।

इस वर्णनामें वौद्ध और आजीवको का नाम नही पाया जाता है। इससे यह मालूम होता है कि उस समय कलिग के समान ही मथुरामें भी जैन और हिन्दू धर्मके प्राधान्यसे बौद्ध धर्मका अस्तित्व नही था। कदाचित होता भी तो उनकी प्रतिष्ठा वहा पर नही थी, वल्कि उसके पनपने के लिए वहां अनुकूल परिस्थिति ही नही थी। उत्तर भारतमें मथुरा ही जैन धर्मका केन्द्रस्थल था। इसलिये खारवेलको वहा पर यवनराज की उपस्थिति और आधिपत्य असह्य हुआ। अत. स्वधर्मकी निषपत्ता के लिए उनको मथुरा तक जाना पडा। खारवेलके आक्रमणसे वहाके अधिवासी आतंकित नहीं थे। अपिच जैन-धर्मावलम्बीयो के आनन्द वर्द्धनके लिये खारवेलका वीरत्वपूर्ण काम सराहनीय था।

मथुरासे वापस आनेके समय खारवेलको खाली हाथ लौटना नही पडा था। गुल्म और लताकीर्ण कल्प-वृक्ष भी उनके द्वारा

कलिंगको लाये गये थे। जैन शास्त्रमें है कि केवल चक्रवर्त्ती सम्राट ही कल्पवृक्ष लगानेके योग्य है। जिससे साफ मालूम पड़ता है कि जैन सम्राट खारवेल कल्पवृक्ष लानेके सर्वथा ही योग्य थे। राजत्वका काफी समय खारवेलने युद्धयात्रा और राज्यजयमें ही बीताया। जैन धर्मके उपासक होते हुऐ भी खारवेलने कैसे हिंसात्मक मार्ग अपनाया ? यह सोचनेके बात है। जैन धर्मका मूलमन्त्र अहिंसा और जीवदया उनके राजनैतिक और साम्राज्यवादी जीवनमें किसी प्रकार प्रभाव डालने में समर्थ नही हुआ ? इसका क्या कारण है ? यही खारवेल के व्यक्तिगत जीवनमें एक प्रधान विशेषता है। भारतके जैन सम्राटोने अहिंसाको जैन धर्मका मूलमन्त्र स्वीकार करते हुए भी और उससे अपनेको अनुप्राणित करते हुए भी उन्होने अपने राजसवधी लोकधर्म की पालना भी ठीक-ठीक ही की ! जैन राजत्व का यही आदर्श है।

जैन सम्राट महापद्म उग्रसेन और मौर्य साम्राज्यके प्रतिष्ठाता चन्द्रगुप्त मौर्य आदि राजाओंने जीवन भर सग्राम की आवेष्टनो में कालयापन किया है, जिससे मालूम पडता है कि उनकी अहिंसा राजनीतिमें बाधक नही थी। अपरन्तु जैन सम्राट गण अपनेको विजयी वीर प्रमाणित करनेको आकाक्षी थे। खारवेलका मार्ग भी वही था। यद्यपि आप सच्चे जैन रूपमें ही पैदा हुये थे। आपका जन्म जिस वंशमें हुआ था, वह 'चेति' वंश भी जैन धर्मका परिपोषक था। अशोक की तरह खारवेलने जीवनके मध्यान्हमें एक धर्म छोड़ कर दूसरे धर्मको नहीं अपनाया। ई० पू० २६१ के कलिंग युद्धमे अशोक के व्यक्तिगत जीवनमें एक महान् परिवर्तन होनेके साथ साथ उनका राजनैतिक जीवन धर्मावभापन्न हो गया था। अशोक

*— कल्पवृक्ष ने भाव किञ्चित् दान देने का होना चाहिये। —स०

की तरह खारवेलका जीवन धर्मचितामें व्यतीत नहीं हुआ था धर्मकी गभीर चिन्ता और तन्मयता उनके मनमें आस्थान नही जमा पाई ।*

खारवेल नि सन्देह एक जैन थे। परतु उनके जीवनकी भावधारा की आलोचना करने से सचमुच सदेहका सम्मुखीन होना पडता है। बचपनसे उनकी जो विद्याशिक्षा हुई थी, उसमें आध्यात्मिकता की बू तक नही थी। अर्थनीतिका प्रभाव उनपर विशेष रूपमे पडा था। इसलिये युवराज अवस्थामें आप प्रजावत्सल और विजयी थे।

ई०पू०२६१ की विजयके बाद अशोकको कलिगसे धनरत्न सग्रह करनेका प्रमाण हमे कहीसे नही मिलता है। उनकी विजय और बिजयके वाद का व्यवहार खारवेलकी विजय और व्यवहार से बिल्कुल निराला था। खारवेल ने अशोकसे कहीं अधिक राज्यको जीता था। किन्तु राज्य जय ही उनका ध्येय नही था। विजित राज्यसे लगान वसूल करके उस धनको जैनोंके लिये और कलिग नगरकी उन्नति साधनके लिये खर्च करनेका प्रमाण हमें हाथीगुफा शिलालेखसे मिलता है। दिग्विजयी की हैसियतसे उन्होंने मगध और पाण्ड्य राजाओ को लगान देनेके लिये मजबूर करना पडा था। जैन धर्मकी साधनामे 'परिग्रह त्याग' ही साधकोका पहला अवलम्बन और सोपान है। ससारकी सभी प्रकार मोह और माया परित्याग पूर्वक नि स्व भावसे जैन लोग साधनामे निरत रहते हैं। परतु जैन सम्राट खारवेलका जीवन दूसरे उपादानमें गठित हुआ था। धनरत्नको पूर्णत.छोडना उनके लिए असभव था। अधिकन्तु

*- शिलालेखसे प्रगट है कि अपने अतिम जीवनमें खारवेलने धर्मसाधना मे अपने को लगा दिया था। अलबत्ता खारवेलने अशोककी तरह धर्मलेख नही खुदवाये थे। —स०

वह एक जैन ग्रहस्थ के श्रावक धर्मके अनुरूप दूसरे देशोंसे धन लाकर अपने साम्राज्यकी उन्नति करते थे। शायद इसलिये दाक्षिणत्यको धन रत्नका भंडार समझकर, उत्तर भारतको छोडकर उन्होंने दक्षिण भारतका आक्रमण किया था। हाथी गुँफा शिलालिपसे यह भी मालूम होता है कि खारवेलकी उत्तर भारत विजय की खबर सुनकर पाड्य राजाको अमूल्य रत्न उपहार देना पड़े थे। शिलालिपमें और भी यह है कि उन्होंने विद्याधरोको जीतकर उनसे भी धन उपहार लिखे थे !

इन सब दृष्टियोंसे विचार करनेसे हमें मालूम होता है कि अशोक और खारवेलमें क्या विभिन्नता थी ? कलिंग विजयके बाद अशोकको हमेशाके लिये राज्य जय-लिप्सा छोडना पडी। सिर्फ उतना ही नही उनके समसामयिक राजा और बुजुर्गोको भी दिग्विजय न करनेको उन्होंने अनुरोध किया था। परन्तु अशोक को तरह खारवेलने सामाजिक उत्सवोका उच्छेद नहीं किया, अपितु प्रजाके साथ मिलकर वह त्योहार आदि मनाते थे।

प्रजाओंकी धमानुचिन्ता और पूजा पद्धतिमें उन्होंने किसी प्रकार के प्रतिबंधको सृष्टि नही की थी। सामाजिक उत्सवो के लिये वह अकुंठित मनसे करोड़ो रुपये खर्च करते थे। जिन उत्सव के लिये हरसाल कईवार शोभायात्रा की तैयारी होती थी और खारवेल को भी उसमें भाग लेना पड़ता था। इन शोभायात्राओंमें सम्राटकी सवारी और राजछत्र आदिका प्रदर्शन भी आडम्बरके साथ होता था। धर्म निरपेक्ष खारवेल किसी भी गुणमें अशोकसे कम नहीं थे। परन्तु सहिष्णुता खारवेलमें ज्यादा थी। किसी सांप्रदायिक मामलेमें वह कभी भी अपने को संतप्त नही करते थे। परन्तु हरेक धर्मकी अभिवृद्धि उनकी कामना थी।

जैनधर्मको सुप्रतिष्ठित करनेको उद्देश्यमें उनकी कर्मतत्प-

रता, प्रयत्न और दान इतिहासमें और हमेशा के लिये स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा। उनके शासनमें जैनधर्म कलिंगमें उन्नति के शिखर पर पहुंचा था। मगधसे 'कलिंग जिन' का उद्धार करके उन्होने जातीय देवताकी पुन संस्थापना की थी।

इसके बाद ही खारवेल के जीवनमें परिवर्तन का अध्याय आरंभ हुआ था। धीरे धीरे जैन धर्मका आदर्श उनमें अभिभूत हुआ था। राजत्वके चौदहवें सालमें महामेघवाहन सम्राट खारवेलको हमेशाके लिये कलिंग इतिहाससे बिदा लेकर अनन्त विस्मृति के गर्भमें लीन होना पडा। इसके बाद उनके विषयमें जाननेके लिए कोई साधन नही है।

इस प्रकार मात्र सैतीस सालकी छोटी उम्रमें कलिंगकी राजनीतिमें उथल पुथल मचाकर खारवेल विदा होते हैं। आगे चलकर हाथीगुफा अभिलेखमे खारवेलके बारेमें और कुछ घटनाएँ नही पायी जाती। इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि खारवेलने मुक्ति की खोजमें खडगिरि या उदयगिरिकी किसी अज्ञात जगह में शरण ली थी। यही सच्चे जैन जीवन की कामना है।

७. कलिंग में खारवेल के परवर्ती युगमें जैन धर्म की अवस्था

सम्राट् खारवेलके बाद और महाराज महामेघवाहन कुदेपश्री या कदर्पश्री ने कलिंग सिंहासन आरोहण किया था। उनके बाद चेतिवंशकी हालत क्या हुई, यह जानना मुश्किल है। मंचपुरी गुफामें जिनकुमार वडखके नामका उल्लेख किया गया है उनका कंदर्पश्री के उत्तराधिकारी होकर राज्य शासन करना अनुमानित किया जासकता है। परन्तु यह निश्चित है कि उस समय तक चेतिवंशकी पूर्व वैभव और शक्ति नही बराबर रह गई थी। डॉ० कृष्णस्वामी आयागार ने दो तामिल ग्रथो, यथा 'शिलपथीकारम्' एवं 'मणिमेखलायी' मे वर्णित कई विवरणो से तत्कालीन कलिंगका परिचय कराया है।[1] उन दोनो ग्रन्थोमें कलिंग राजवशके दो भाइयो के विवादका वर्णन दिया गया है; इससे मालूम होता है कि कलिंग राज्य उस समय दो खण्डोमें विभक्त हुआ था। एक की राजधानी थी कपिलपुर और दूसरे की सिंहपुर। इन दोनो राज्योमे जो दो भाई राजत्व करते थे वे अनुमानित चेतिवश सभूत और खारवेलके वंशधर ही होगे। इन दोनो भाइयोके आपसी तुमुल युद्ध होने के कारण कलिंग छार-खार हो गया था। और बादको एक वैदेशिक आक्रमण के वश में फस गया था।

---

1 Ancient India and South Indian History and Culture, Vol I pages 401-402,

ये वैदेशिक आक्रमणकारी कौन थे, और इनके राजत्व कालमें कलिंगमें जैनधर्मकी हालत कैसी थी; इसका विचार नीचे किया गया है।

"मायलापाजि" का कथन है कि कलियुग प्रारंभ तक युधिष्ठर से लेकर १७ राजाओने परम्परिक क्रमसे ३७८२ वर्ष तक राजत्व किया था। इस राज परम्पराके राजा शोभन देव हैं। उस समय दिल्लीके भोजक पातिशा (बादशाह) के सेनापति रक्तबाहुने 'चिलका' देकर उड़ीसा पर आक्रमण किया था। बादको अष्टादशराजाके समयमें उड़ीसा पूरी तरह इन मुगलोके हस्तगत हुआ था, मुगलोने उड़ीसामें ४७४ ई० तक २४६ वर्ष राजत्व किया था और इसके बाद ययातिकेशरी ने उनको परास्त करके भगा दिया था। यही हैं 'मादला पांजि के' वर्णित उपाख्यान।

इसमें कुछ काल्पनिक विषय होने पर भी मूलत यह एक ऐतिहासिक सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित हुआ मालूम पड़ता है क्योंकि प्राचीन उड़ीसामें एक विदेशी राजवश की बहुतसी मुद्रायें अब मिली हैं। इन सभी मुद्राओकी तैयारी कुशाण मुद्राकी तरह होने से पुरातत्वविदो ने उनको "कुशाण मुद्रा" कहा है। पहले पुरीके आसपास ये मुद्रायें खूब मिलती थी। १९ वी शताब्दीके मुद्राविद्-जैसे हर्णले और रैपसन-दोनो इन मुद्राओको "पुरी-कुशाण मुद्रा" कहते हैं।[2] उनके मतानुसार इन मुद्राओका प्रचलन यहा के किसी राजवश द्वारा नही हुआ था। पुरी जगन्नाथ महाप्रभूके दर्शनके लिये आते हुये असंख्य यात्रीयोके द्वारा वे सब मुद्रायें यहां लाई गयी थी। पुरीके-आसपास ही जिस समय ये मुद्रायें मिलतीं थी उस समय इन पडितो की युक्ति

2 Proceedings of Asiatic Society, Bengal, 1895 page 63.

ग्रहण योग्य हो सकती थी। किन्तु अब तो उड़ीसा के सारे प्रान्तोंमें गंजामसे लेकर मयुरभंज तक बल्कि छोटानागपुर तक भी ऐसी हजारों मुद्रायें मिली हैं[3]। अतःयह कहना कि ये सब मुद्रायें जगन्नाथ पुरी के यात्रियों द्वारा उड़ीसामें लाई गई युक्ति संगत नहीं है। बल्कि सच तो यह है कि ये सभी मुद्रायें कलिंगके वैदेशिक शासको द्वारा प्रचलित की गई थीं।

उड़ीसामें इसप्रकार की मुद्राओंका चलन करने वाले ये वैदेशिक शासक कौन थे? वे किस वंशके और कहा से आये थे? ये प्रश्न उठते हैं।

इन सब प्रश्नोंका समाधान करना आसान नही है। राखाल दास बानर्जी कहते हैं कि संभवत: ये वैदेशिक शासक कुशाण थे।[4] क्योकि इन मुद्राओंमें से बहुत सी मुद्रायें बिलकुल कुशाण प्रचलित मुद्राओं जैसी हैं, कुशाण मुद्राओं में जिस तरह एकओर कनिष्क और हुविष्क और राजा वसुदेवकी प्रतिच्छवि और दूसरी ओर माओ (चन्द्र), अस्त (अग्नि) और आडो (वायु) आदि देवताओंकी तस्वीरें रहती हैं, उसी तरह उड़ीसा में मिली हुई वैदेशिक मुद्राओ में भी कई मुद्राओं में वैसी ही प्रतिच्छवि और प्रतिमूर्ति अङ्कित है। डॉ० प्रतिवल्लभ माहांति ने राखालदास बनर्जी की युक्तिको माना है। ऐतिहासिक एस० के० बोस कहते हैं कि कुशाणोंने वंगदेश तक अपना साम्राज्य फैलाया था।[5] किन्तु कुशाण साम्राज्य बनारस से आगे पूर्वांचल तक पहुँचनेका कोई विश्वसनीय प्रमाण अबतक नही मिला है। इसलिये कुशाण साम्राज्य वंगदेश तक व्याप्त होने की युक्ति अमूलक मालूम होती है। कुशाण साम्राज्य जब वंगदेश

---

3 O. H. R. J. Vol II, page 84
4 History of Orissa, Vol, I page 113
5 Indian Culture, vol. III, 729 ff.

तक परिव्याप्त नहीं हुआ था तब उसकी उडीसामें आने की बात पूरी मिथ्या प्रतीत होती है। इससे 'मायला पांजि' वर्णित मुगल आक्रमण कुशाण आक्रमण नही हो सकता। यह कुशाणके अतिरिक्त दूसरा कोई वैदेशिक आक्रमण होना निश्चित है।

अब डॉ॰ नवीनकुमार साहु प्रमाणित करते हैं कि 'मायला पांजि' वर्णित उड़ीसामें मुगल आक्रमण वस्तुत: मुरुड आक्रमण और आधिपत्य होना चाहिये [6]। इन मुरुंडोके बारेमें पुराण, जैन शास्त्र, ग्रीक और चैनिक लेखकों के विवरणोमें उल्लेख मिलते हैं। पुराण-मतसे तुखार (कुशाण) के बाद १३ मुरुड राजाओं ने दो सौ वर्षों तक राजत्व किया था। [7] मुरुड वर्णना से जैनशास्त्र भी भरपूर है, क्योंकि मुरुंड राजालोग जैन और जैनधर्मके पृष्ठ पोषक थे।

'सिंहासन द्वात्रिंशिका' [8] नामक एक जैन ग्रन्थ से मिलता है कि मुरुंड राजाओंकी राजधानी कान्यकुब्ज थी, परन्तु कान्य कुब्ज में मुरुड बहुत काल तक राजत्व करते हुये मालूम नहीं होते। 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' पुस्तक में जिस मुरुडराज का उल्लेख हैं उसका कुशाणो के अधीन एक सामंत राजा होना निश्चित है। 'वृहत कल्पतरु' नामक एक दूसरे जैन ग्रन्थ से मालूम होता है कि मुरुडों की राजधानी पाटलीपुत्र [9] थी। और मुरुड राजा की विधवापत्नी ने जिन-पथ का अवलंबन

---

6. A History of Orissa Vol, Edited by Dr. N.K. Sahu, Pages, 331-335
7. Dynastic History, Kalinga Age, by Pargiter, Page. 46
8. Dr. Probodh Chandra Bagchi's Speech in Indian History Congress,

९. अभिधान राजेन्द्र कोष, भा० २ पृ० ७७६

करके इस धर्म की अभिवृद्धि-साधन के लिये अपना जीवन ही न्योछावर कर दिया था। जैन पुराणोंसे और भी मालूम होता है कि पादलिप्त नामक जैन साधु ने पाटलिपुत्र के मुरुंड राजाके मस्तिष्क रोग को अच्छा किया था।[10] ये साधु पादलिप्त उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्य के जैनगुरु सिद्धसेन के मानो समसामयिकही थे। ग्रीक् भौगोलिक टोलमी ने[11] पूर्व भारतमें मुरुड राज्य की भौगोलिक सीमारेखा निर्णित रूप में बताई है। उनके लेखसे मालूम होता है कि ई० द्वितीय शताब्दी में मुरुड राज्यका विस्तार तिरहूत से गंगा नदी के मुहाने तक हुआ था। चीन देशके वु (Woo) राजवंश के विवरण से[12] भी जान पडता है कि ई० तीसरी शताब्दीमें मुरुड पूर्व भारत में राजत्व करते थे, जैसे कि फरासीसी पडित सिलवॉलिवि प्रतिपादन कर गये हैं।

इस प्रकार उड़ीसा में रक्तबाहु का आक्रमण वास्तवमें पूर्व भारतीय मुरुडो का आक्रमण था और यहा से प्राप्त असख्य मुद्रायें जिनको कुशाण मुद्रायें अनुमानित किया गया है यथार्थमें इन मुरुडो द्वारा प्रचलित मुद्रायें थी। १९४७सालमें शिशुपालगढ में जो पुरातात्विक भूखोदन हुआ था, उसमे उडीसामें जैन मुरुंड के राजत्वका सुस्पष्ट प्रमाण मिल चुका है। इस भूखोदन से मिली हुई एक स्वर्ण मुद्राके बारेमें आलोचना करते हुये डॉ० अनत सदाशिव आल्टेकार कहते हैं कि यह मुद्रा "महाराजाधिराजा धर्मदामधर" नामधेय किसी एक मुरुड राजा द्वारा प्रचलित की गई थी। डॉ० आल्टेकार आगे और भी कहते हैं कि यह मुरुंड राजा ओडीसामें ई० तीसरी शताब्दी में शासन

---

१०. इडियन कल्चर, भाग ३ पृ० ४६

११ इंडियन एन्टीक्वेरी, भा० १३ पृ०३३७

१२ सिल्वालेवी, Melanses Charles de Harlez pp. 176-186

शिशुपालगढ़ से एक मृण्मय फलक मिला है जो संभवतः एक सील मोहर है। उसमे लिखा है— "असचस पसनकस" अर्थात "अमात्यस्य प्रसनकस्य"। अतः यह फलक अमात्य प्रसन्नक की सील मोहर होना सभव है। इस फलकमें लिखे हुए अक्षर और उपरोक्त स्वर्ण मुद्रा में व्यवहृत हुए अक्षर एक समय के ही मालूम होते हैं। अगर यह सच है तो प्रसन्नक को महाराज धर्मदामधरका अमात्य माना जासकता है।[१४]

डॉ० नवीनकुमार साहुने प्रमाणित किया है कि उड़ीसा में मुरुड राजत्व ई०दूसरी शताब्दीके शेषभागसे ई०चौथी शताब्दी के मध्यभाग तक प्रचलित था[१५]। लेकिन 'मादलापांजि' में उल्लेख है कि मुगल राजत्व ई० ३२७ से ४७४ ई० तक चला था। 'मायला पाजि' के इस मुगल राजत्व को डॉ० नवीनकुमार साहुने मुरुड राजत्व माना है और इस राजत्वके काल निर्णय में मायला पाजिकारने जो भूल किया है उसे ऐतिहासिक प्रमाण भितिसे संशोधन किया है।

इस प्रसंगमे बौद्धग्रन्थ 'दाठाधातु वश' में लिखित बुद्धदंत का उपाख्यान भी आलोचनीय है। इसमें लिखा है कि चौथी शताब्दीके आरम्भमें कलिंगके राजा गुहशिव थे। संभवतः यही गुहशिव राजा मुरुड हो सकते हे। वे पहले जैन थे और बौद्ध की अपनी राजधानी दतपुरमें बुद्धदंतकी महिमा से मुग्ध होकर वे बुद्ध हो गये थे। इससे पाटलीपुत्र के जैन राजा पाडु विक्षुब्ध हुए थे। इस पाडुको भी डॉ० नवीन कुमार साहुने एक मुरुड राजा लिखा है। कलिंगके गुहशिवको पांडु राजा के सामंतराज

---

१३. ऐन्शियेंट इ डिया, नं० ५ शिशुपालगढ़ उत्खनन रिपोर्ट

14 S. C. De, O. H. R. J., vol. II, No. 2

१५. डॉ० साहू, ए हिस्ट्री ऑव उड़ीसा, भा० २ पृ० ३३४

रूपमें 'दाठाधातु वंशमें' भी वर्णित किया गया है।

गुहशिवके धर्मांतर ग्रहणसे विचलित होकर पांडु राजाने उन्हें अपनी राजधानी पाटलीपुत्र को बुद्धदंतको साथ लिये चले आने के लिए आदेश दिया। पाटलीपुत्र में दंतधातुको नष्ट कर देने के लिए बहुत कोशिश करने पर भी वे सफल काम न हो सके। और बादको दंत की अद्भुत शक्ति देखकर खुद भी बौद्ध हो गये। बादको इस दंतपर अधिकार करने के लिये कलिंग के पड़ोसिओं ने कलिंग पर धावा किया था। इन आक्रमणकारियों में क्षीरधार प्रधान थे। इस क्षीरधार को श्री युक्त सुशील-चन्द्रने वाकटाक राजा और प्रवरसेन अन्दाज किया है[16]।

युद्धमें गुहशिवने प्राणत्याग किया परन्तु मृत्युके पूर्व ही उन्होंने अपनी कन्या हेममाला और दामाद दंतकुमार के हाथों बुद्ध दंतको सिंहल भेज दिया था। जब हेममाला और दंतकुमार सिंहल पहुंचे तो उस समय वहां के राजा महादिसेन थे। इनके राजत्व कालका समय ई० २७७ से ३०४ तक होता है[17]। सुतरां कलिंगमें गुहशिव का तीसरी शताब्दीमें राजत्व करना सुनिश्चित है।

मध्य युग

यह तो प्राचीन युग का विवरण है। अब देखना है कि मध्य युगीय उड़ीसामें जैन धर्मकी हालत कैसी थी? कलिंगमें मुरुंड शासनके अवसान के बाद गुप्तवंश का आधिपत्य होना ऐतिहासिक प्रगट करते हैं। गुप्त राजवंशका राजनैतिक प्रभाव समुद्रगुप्त की दिग्विजय के बाद से पड़ना सुनिश्चित है। इस राजनैतिक प्रभावके साथ सांस्कृतिक प्रभाव भी अप्रतिहत भाव

16. O. H. R. J. Vol. III, No. 2. P. 104

१७- वाकटक एण्ड गुप्त एज, डॉ० आल्टेकर और डा० मजुमदार कृत-प्र० 'सीलोन' पृ० १३१-१६१

से पड़ा था,लेकिन इन बातोंकी गवेषणा आज तक धारावाहिक रूप से नही हो सकी हैं।

गुप्तोत्तर युग ही मध्य युग है। इस समय जो सुविख्यात राजवंशोने उडीसा के भिन्न भिन्न प्रातो में राजत्व किया था उनमें से उल्लेखनीय गग वश, कगोदर शैलोद्भव वश, तोषल के भौम वंश, खिजली मडल का भंज वश और कोशलोत्कल का सोम वंश थे। इन सोम वंशीय राजाओं को मादला पाँजि-कार केशरी वंशीय कहते है। इन राजवशोके राजत्व कालमें ब्राह्मण धर्म और खासकर शाक्त, शैव और वैष्णव धर्मों का प्राधान्य चारो ओर दिखाई देता था। अतः यह युग उडीसा में बौद्ध और जैनोंके अधःपतन का काल प्रतीत होता है। उडीसा मे बौद्ध धर्म अपनी अस्तित्व रक्षा करने के लिये तान्त्रिकता का आश्रय लेकर वज्रयान और सहजयान आदि पंथोमे परिणत हो गया था, लेकिन जैन धर्मके तान्त्रिकता का सहारा लेनेका सुस्पष्ट प्रमाण नही मिलता है। अपनी प्राचीन परंपरा की रक्षा करके जैनधर्म मध्ययुगमें भी गतिशील बना हुआ दिखायी देता है। प्राचीनकाल की तरह उस समय भी खंडगिरी (उडीसा) में जैनधर्म की पीठभूमि थी। खडगिरि के कई गुफाओ में जैसे नवमुनि गुफा, वारभूजी गुफा, और ललाटेंदु केशरी गुफा-इस मध्ययुगमे ही निर्मित हुई थी। उड़ीसा के चारो ओर खास कर के दुभरु के आनंदपुर प्रांत, कटक जिल्लाके चोद्वार प्रांत, पुरीकी प्राची उपत्यका, गंजामके घुमुसर प्रांत और कोरा-पुट के नवरंगपुर अंचलमें जैनधर्म के पुरातात्विक अवशेष अब बहुत मिले है। वह सब मध्य-युग की कीर्त्तियाँ हैं। आज यह सब कुछ देखने से मन में यह धारणा दृढ होती है कि मध्य-युग में जैनधर्मका प्रभाव उडीसा के धर्म जीवन में अप्रतिहत था- उसका प्रभाव तब भी उत्कल में व्याप्त था।

उत्कल में राजत्व करने वाले सोम वंशी राजाओं में उद्योत केशरी सब से प्रसिद्ध नरपति थे। कोई कोई उन्हें ललाटेंदु केशरी भी कहते हैं। उद्योत केशरी शैव धर्म के पृष्ठपोषक के नामसे इतिहास में विख्यात हैं। उनके पिता ययाति महाशिव गुप्तने भूवनेश्वर में सुप्रसिद्ध लिंगराज मंदिर का निर्माण कार्य आरंभ किया था। इस मंदिर की परिसमाप्ति राजा उद्योत केशरीने कराई थी। उद्योत केशरी की माता कोलावती देवी ने भुवनेश्वर में चारुकला खचित ब्रह्मेश्वर मंदिर तैयार कराया था। उद्योत शिवभक्त होने पर भी जैनधर्मकी ओर प्रगाढ श्रद्धा और अनुराग रखते थे। खंडगिरि की ललाटेंदु केशरी गुफा उनकीही कीर्त्ति है; इस में कोई संदेह नहीं। जैन अरहंत और साधुओंके लिये सम्राट खारवेलने जिस तरह अतीत में बहुत से गुंफायें खुदाई थी, उसी तरह उन जैन सम्राट का पदानुसरण कर उद्योत केशरी ने भी जैनों के लिये विश्राम स्थल, और आराधना मंदिर के लिये खंडगिरि में गुफायें निर्माण कराई थी। केवल 'ललाटेंदु केशरी गुंफा' ही नहीं वल्कि नवमुनि और बारभूजी गुफायें भी इस काल की कीर्त्तियां है। ऐतिहासिकों का कथन है कि नवमुनि गुफा में उद्योत केशरी के राजत्वकाल का एक शिलालेख अब भी है। उद्योतकेशरी के राजत्व कालके अष्टादशवें वर्षमें यह शिलालेख उत्कीर्ण हुआ था। याद रखना होगा कि ठीक इस वर्ष उद्योत की माता कोलावती देवी ने भुवनेश्वर में ब्रह्मेश्वर के मंदिर निर्माण कार्य पूर्ण किया था। इससे मालूम होता है कि उस समय शैव और जैनधर्म समांतराल भाव से उड़ीसामें प्रचलित थे। और राजा उद्योत केशरी दोनो धर्मोको एक नजरसें देखते थे।

नवमुनि गुफा की [१८] शिलालिपि से जान पड़ता है कि

---

१८ एपीग्रेफिया इंडिका, १३ १६५-६६

उद्योतकेशरी के अष्टादश वर्ष राजत्वकालमें सुविख्यात जैनसाधु कुलचंद्र के शिष्य आचार्य शुभचंद्र तीर्थयात्रा के लिये खंडगिरि आये थे, और वहां वे कीर्त्तियां स्थापन किये थे। आचार्य शुभचंद्र के प्रति राजा उद्योतकेशरी का भव्योपयुक्त सम्मान प्रदर्शन करना शिलालिपि से जान पडता है। ऊपर लिखी हुई आलोचना से मालूम होता है कि मध्ययुगीय उडीसा में एक समय जैनधर्म राजाओं को पृष्ठ-पोषकता लाभ करके समृद्धिवंत हो सका था! उडीसा के नाथ धर्म में भी जैनधर्म का प्रभाव प्रतिमाओंमें पड़ा था। जैनधर्मका समृद्धि साधन खास कर न होता तो इतना प्रभाव पडना सभव नही हो सकता था। परवर्त्ति युग के अरक्षित दास पंथ और महिमा पंथ आदि धर्म संप्रदायोंमें भी जैन धर्मके बहुतसे आचार तत्व और दर्शनकी अभिव्यक्ति और समावेश देखनेको मिलता है। और यह दिखा देता है कि जैनधर्म की समृद्धि प्राचीन कालसे शुरू होकर मध्ययुग तक अव्याहत चलती रही थी। उडीसाके सांस्कृतिक जीवनमें जैनधर्म किस तरह अपना प्रभाव फैला सका था इस की विशद आलोचना आगे की जायगी।

आज कल आधुनिक युगमें भी उड़ीसा के धर्म जीवन पर जैनधर्मका जो प्रभाव फैल रहा है यह अनुसंधान की वस्तु है। आज भी खंडगिरि केवल जैनों को नहीं हिंदुओं की भी एक परम पवित्र तीर्थ भूमि है। माघ शुक्ल सप्तमीके दिन हर साल यहाँ जो मेला लगता है उसमें हजारो यात्री यहां इकट्ठा होकर सिर्फ अरक्षित दासकी स्मृतिपूजा करते हैं, यह नही बल्कि जैन तीर्थंकरो की प्रतिमूर्त्ति और उनके शासन देवताओं के उद्देश्य में भी सेवा पूजा करते हैं।

८. उत्कल की संस्कृति में जैन धर्म

उत्कलमें अत्यन्त प्राचीनकाल से एक प्रधान धर्मके रूपमें जैनधर्मका प्रचलन है। इस प्राचीन धर्मका प्रभाव उत्कल के सांस्कृतिक जीवनमें अनेक रूपमें परिलक्षित होता है। इतिहास से प्रमाणित होता है कि उत्कलके विभिन्न अंचलोंमें "भंजवंश" का राजत्व था। "भजवंश" वाले कोई कोई शैव भी थे और कोई-कोई वैष्णव, फिर भी ऐसा मालूम पड़ता है कि इन लोगो में जैन-संस्कृतिका प्रभाव भी अक्षुण्ण था। इस वंशका एक ताम्र शासन केन्दूझर जिला के उखुडा नामक ग्रामसे मिला था, उससे विदित होता है कि "भंजवंश" के आदि पुरुषोंकी उत्पत्ति कोट्याश्रम नामक स्थलमें मयूरके अंडेसे हुई थी। संभव है, यह कोट्याश्रम जैन हरिवंश में वर्णित असंख्य मुनिजनाध्युषित कोटिशिला ही हो। मयूरके अंडेको विदीर्ण करके (मयूरांड भित्वा) वीरभद्र "आदिभंज" के रूपमें अवतरित होना उसमें वर्णित है। यह मयूरी साधारण नहीं, वर जैनोके पुराणो में वर्णित श्रुतदेवी की वाहिनी थी। साधारण मयूरी के डिंब से मानवकी उत्पति भला कैसे संभव होती? हरिचन्द ने स्वरचित 'संगीत मुक्तावली' में अपने वंश परिचयके प्रसंगमें लिखा है कि उनका वंश श्रुति-मयूरिका से उत्पन्न है। हरिचन्द कनका के राजवंशीय थे और उनकी रचनायें १६ वी शती की रची हुई थी। उपर्युक्त श्रुति, श्रुतिदेवि अथवा सरस्वती ही है। जैनमत में सरस्वती का वाहन मयूरी है। इससे प्रतीत होता है कि

"भंजवंश" की धार्मिक मान्याताओं पर जैनधर्मका प्रचुर प्रभाव था। प्रोक्त खखुड ताम्र शासनमें वीरभद्र गणदण्डका भी उल्लेख है। यह गणदण्ड जैन पुराणोक्त गणधर, गणी, गणेन्द्र प्रभृति शब्दो का एक पर्याय मात्र है।

उत्कलका उत्तरांश एक समय तोषालीके नामसे अभिहित था। तोषाली में शैलपुर के नामसे एक जैन तीर्थ भी विद्यमान था। भरुकच्छके वाणव्यन्तर और अर्बुद पर्वतके प्रभासतीर्थके समान ही शैलपुरको भी ख्याति जैनोके बीच थी। यह शैलपुर राजगिरि (राजगृह)का हीं नामांतर मात्र है। विपुला नामक पहाड़ियों से घिरे रहने के कारण इसका इस प्रकार का नामकरण हुआ। भ० महावीर के धर्म प्रचारका प्रधान पीठ होने के कारण इस राजगिरि या शैलपुर के अनुकरण से आगे भी इसी नामसे विभिन्न स्थानोमें जैनपीठोकी स्थापना हुई प्रतीत होती है। तोषाली में शैलपुर नामक तीर्थके होने की बात जैन ग्रन्थों से भी विदित होती हैं। वहा पर एक ऋषि पुष्करिणी भी थी। यहां पर आठ दिनो तक प्रति वर्ष शरदोत्सव भी मनाया जाता था। आजकल यह ऋषि पुष्करिणी कहा और किस नामसे परिचित है? यह गवेषणाका विषय है, जो आजतक नही हो सका है।

केंदूझर जिला के आनन्दपुर सबडिविजन में पोड़ासिंगिड़ी के नाम से एक ग्राम है, जो आनन्दपुर से ६ मील की दूरी पर है। वहा पर प्राय. एक वर्ग मील की क्षेत्राकार भूमि को 'बउला' नामक पहाड़ियो ने घेर रखा है। एक ओर ध्वस्त, प्राचीरो के अवशेष हैं। वहाँ पर तीर्थंकरो की तथा यक्ष और यक्षिणियो की सेंकड़ो मूर्त्तिया इत स्तत पड़ी हें। कोई आधी गड़ी हुई, कोई सीधी और कोई टेढी खडी हुई, कोई उत्तान लेटी और कोई टूटी हुई हैं। पर्वत पर खोदी हुई सीढ़ियो पर चढ़कर अधित्यका तक पहुचने पर एक विशाल तीर्थंकर मूर्ति

दिखाई पड़ती है, जो भ० महावीर की ही मूर्ति है। यह स्थान पहले तोपाली में अतर्भुक्त था, इसलिए निःसंदेह इसे तोपाली में स्थित शैलपुर माना जा सकता है। शैलो से परिवेष्टित नगरी को शैलपुर ही कहना उचित है। राजगिरिकी अवस्थिति शैलश्रेणय के बीच होने के कारण उसे शैलपुरके नाम से पुकारा जाता था। यह स्थान भी वैसी ही अवस्थिति में हैं। राजगिरि के चतुर्दिक जिन पहाड़ियो की अवस्थिति है, उन्हें विपुला के नाम से पुकारा जाता है और इस स्थान के पहाड़ो को भी वाउला के नाम से। उभय स्थानो का यह सादृश्य विचार का विषय है। वे एक बिंदु के समान गोलाकार भी हैं। वैसी ही साम्यता वहां पर भी विद्यमान है। इन सारी बातों पर विचार करने से उत्कल में जैनधर्म की प्राचीनता सहज ही प्रमाणित होती है।

लोकगीतों के प्रमाण भी उपर्युक्त तथ्य के सत्य होने की घोषणा कर रहे हैं। उत्कल के सपेरो (केला) द्वारा गाए जाने वाले कमल तोडने के गीत में है कि कंस की स्त्री पद्मावती ने घनीत्री का व्रत किया था[१]। अतः कंस ने कृष्ण जी को एक सौभार पद्म तोड़ने का आदेश दिया। इसीलिए कालिंदी में कमल तोड़ने के ख्याल से कृष्ण जी ने प्रवेश किया। इसी समय कालीय ने जब दंशन करना चाहा तब श्री कृष्ण ने उस का मर्दन किया।[२] लेकिन हिन्दुओं के विष्णु पुराण, हरिवंश

१- कसर घरणी पद्मावती राणी करिछि घनित्री ओपा,
   शएभार पद्म देवुरे कन्हाइ न थिव पावड़ा मिशा।"

२- कवि दीनकृष्णदास का "रसकल्लोल" इसी लोक-प्रवाद से प्रेरित है:
   "कुंजविहारी विहरते गोपनरे,
   कंस आज्ञाभासी लागिला नन्दकु देव कमल शते भार,
   कले नन्द भय न दिशे उपाय के देव पद्म फूल तोली,

आदि ग्रन्थोमें ऐसा वर्णित है कि श्री कृष्ण ने कालिंदी ह्रद में योंही खेल खेल में प्रवेश किया था। अतः स्पष्ट है कि जैन 'हरिवंश पुराण' का प्रभाव उड़िया लोक-साहित्य में अभी भी विद्यमान है।

उत्कल भाषा के अत्यंत प्राचीन ग्रंथ कवि श्री सारलादास के 'महाभारत' में भी राधाचक्र शब्दका उल्लेख है।[3] द्रोपदी के स्वयंवर के समय लक्ष्य-भेद करते हुए अर्जुन को घूर्णिमान चक्र के भीतर राधा, अर्थात लक्ष्य को भेद करने की बात जैन हरिवंश में कही गयी है। पर, संस्कृत 'महाभारत' में इस राधाचक्र का कोई भी उल्लेख नही मिलता। निःसंदेह यह जैन हरिवंश से ही गृहित है।

'प्राची माहात्म्य' के प्रणेताओ ने अपने विषय वस्तु को 'पद्म पुराण' से गृहित बताया है, पर मूल 'पद्म पुराण' में वैसा वर्णन है नही। संभव है यह सब जैन 'पद्म-पुराण' से गृहित वस्तु है।

उत्कल के सुप्रसिद्ध वैष्णव कवि जगन्नाथ दास के 'भागवत' में मूल 'भागवत' का अनुशरण रहते हुये भी उसमे जैन तत्वदीक्षा का प्रतिपादन किया गया है। उसके पंचम स्कंध के पांचवें अध्यायमें ऋषभदेवने अपने सौ पुत्रोको जो उपदेश प्रदान किया है, वह उपदेश जैनधर्मके तत्वोसे पूर्णतः प्रभावित है। उदाहरणतः

हे पुत्रो, सावधानता पूर्वक मेरे वचन को सुनो,

कर्ण शुणिकरि भयपरिहरि आग होइले वनमाली,
काली भयरें केहि न पशे कालिंदिरे,
कृष्ण आनन्दरे प्रवेश होइले नटजेन्हे नाट मंदिरे।' ९ म छद

३. "राधाचक्र" वुलुअछि सात ताल उच्चे
ताले उच्चरे पटाए अछि जे सुसचे
लक्षे बल अनु धारि से पटाए उठि।" सारला महाभारत।

जो प्राणी (सांसारिक) कर्मोंके आचारों में निरत रहता है
स्वयं ही (उन कर्म बंधनों में पड़ कर) वह घोर नरक का
भागी बनता है।

जो सत्वगुण में प्रेरित है और ब्रह्मकर्म करता है
तथा अनंत की जब आराधना करता है, मैं सच कहता हूं
वह (वेद) विहित निर्वाण मार्ग है।
जगत में स्त्री संगमादि कर्म तमस का द्वार है
इन द्वारों का परित्याग करके महत् जनों की सेवा
करनी चाहिए।

जो मेरे पदों पर प्रमाद रहित होकर अपने मन को
अर्पित करता है,
जो क्रोध विवर्जित है और सारा जगत जिसका सुहृद मित्र है
वही महत जन है और प्रशांत साधु भी वही कहलाता है,
जो जन मुझे नहीं भजता है और अनित्य देह को नित्य
समझ कर

जाया, गृह, धन और तनयादि के भ्रम में पड़ कर
नाना कर्म-क्लेश सहन करता है
वह साधु नहीं है।
जब तक आत्मा को (मनुष्य) पहचान नहीं पाता है
तब तक (भ्रम में पड़ कर) पराभव का भोग करता है,
निरंतर मन को बहका कर जबतक (मनुष्य) नाना कर्म
में प्रवृत रहता है

तब तक कर्मवश होकर वह नाना योनियोंमें जन्मलेता है।
मैं अव्यय वासुदेव हूं, मुझ में जिसकी प्रीति नहीं है
वह देह और बंधु के परे नहीं है इसलिए
वह ईश्वर को पहचानता नहीं।
स्वप्नवत् (क्षणिक) इस देह पर (मनुष्य) नाना अहंकार

रखता है।

जैसे निद्रा में (हम) सुख भोगते हैं, पर जाग्रत में उस
का कोई लाभ हमें नहीं मिलता।
गृहबंध में नारी के साथ अनुदिन रहकर
उसके साथ पति-पत्नी का संबंध रखकर
(मनुष्य) मेरा गृह, मेरा धन, कह कर, और माया में,
आच्छन होकर बद्ध रहेगा
तब तक उसके सारे कर्म-बंध खडित नहीं होंगे।

× × ×

मैं हरि हूं, अखिल (सृष्टि) का गुरु हूं,
देही होकर मुझे ही भजो।
जो निवृत्त चित्त होकर मेरे पदों पर भक्ति रखता है,
हिंसा और व्यसनों से परे होकर मेरी आराधना करता है,
मेरे गुण और कर्मों का निरन्तर कीर्त्तन करता है,
एकांत भाव से मुझे याद करता है,
इन्द्रियों के दमन तथा अध्यात्म विद्या के आचरण पूर्वक,
श्रद्धा पूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करता है
(तथा) प्रशांत और वचन में सच्चा है,
उसका गृह बंधन नहीं है और वह भवजन्म से मुक्ति
पाता है।
उसके कर्म-बन्धों को अक्लेश ही मैं काट देता हूं,
जिन कर्मों से आत्मा का श्रेय है उन कर्मों पर पामर लोग
श्रद्धा नहीं रखते थोड़े से सुख के लिए मतिभ्रम होकर
अशेष दुःखों का कारण अनेक हिंसा का आचरण करते हैं
उनकी दृष्टि नष्ट हो जाती है और वे अविद्या में भ्रमित
होते हैं।

× × ×

चैतन्यदास रचित विष्णुगर्भ पुराणके ६ठे अध्यायमें भी ऋषभ-भरत का संवाद है। अलेख पंथका यह एक प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें अलेख पंथकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया गया है अतः भरत आदि १० पुत्र अपने पिता ऋषभदेव से अलेख धर्मकी दीक्षा लेते इसबातका इसमें उल्लेख है। उत्कलमें प्रचारित यह अलेख धर्म जैनधर्मका ही एक दूसरा स्वरूप है। विष्णुगर्भ पुराण के ७वें अध्याय में मिलता है कि ऋषभदेव विष्णु के गर्भमें न जाकर वैकुंठ को गए हैं। इसमें ऋषभका महत्व विशेष रूपसे प्रतिपादित किया गया है। पूर्वोक्त, भागवतसे उद्धृत ऋषभके जैसे विष्णुगर्भ पुराणकी हितवाणी में भी जैनधर्म के तत्व स्पष्टता परिलक्षित होते हैं।

"इंद्रियो को दृढ़ता से बांध कर रखो,
जैसे राजा चोरियों को बंदी बनाकर रखता है।
माया (कपट) और मिथ्या भाषी न बनना,
जानते हुए भी अनजान के जैसा रहना,
सत्य का व्रत धारण करते हुए सत्य ही बोलते रहो
कुपथ की कल्पना मन में भी न लाओ,
गृह में रहते हुए भी अत्यंत विषम जंजाल में न फंसना
पुण्यकर्म का ही बराबर सम्पादन करो और अकर्ममें न चलो,
लाभ से सुख अथवा हानि से दुख न मानो और
सर्वभूत में अपने को देखो,
सर्वभूत में दया भाव रखो और निरीह प्राणियो
पर क्रोध-द्वेष न रखना।
विष्णु पर भक्ति रखने वाले लोगो की बातों से प्रवर्त्तित
होकर
सदा विष्णु भक्ति रस में रत रहना।
कुसंग परित्याग कर सत् संगति में रहो और

अनुक्षण भक्ति के व्यापार में लगे रहो।
इस तरह जो अपने परिजनों सहित विष्णु भक्ति में प्रवेश
करता है
उसे भक्ति का दिक् विदिक् प्रज्वलित करने वाले बाना
(पताका) का दर्शन होता है।
जिनने लोगों के साथ (दुनिया) में प्रेम भाव था
उन्हें (भक्ति मार्ग में आ जाने पर) फिर याद न करना।
इस तरह निवृत्ति मार्गकी भी बहुत सी बातें कही गयी हैं:
साधना की विधि निश्चल ध्यान का एक तंतु है
चेतन्य को जगा कर (फिर उसी तंतु में) मन लगा कर
(साधना की जा सकती है)।
मन के साथ नाना चिन्ताएँ उस तरह जड़ित
रहती है जैसे पर्वत को सब वृक्ष घेरे रहते हैं।
ऋषभ ने कहा, हे पुत्रो! मेरी गोदी में बैठो
और मंगल पूर्वक अलेख की दीक्षा ग्रहण करो।
(तब) पिता को नमस्कार पूर्वक
दसों भाई दीक्षा ग्रहण करने के लिए
पिता की गोदी में बैठ गए।
पुत्रों को ऋषभ ने अलेख दीक्षा दी और
ध्यान भेद तथा मुद्राएँ बताईं।

उड़ीसामें बउला गाय का उपाख्यान अत्यन्त परिचित और लोकप्रिय है। कथा है, बउला नामकी एक गाय अपने बछड़े को छोड़कर चरने के लिए जंगल गयी थी। वहां एक क्षुधित व्याघ्र उसे खाने को उद्यत हुआ। बउला ने उससे कहा मैं बछड़े को घर छोड़ आयी हूँ, उसे जरा दूध दे आऊं, तब मुझे खाना। बाघ राजी हो गया, बउला भी बछड़े को दूध पिलाकर बाघ के सामने पहुंच गयी, बाघ स्तब्ध था उसकी

सत्यता पर। सत्यके प्रभाव ने हिंसक पशुको भी अहिंसक बना दिया। जैनधर्मकी अहिंसा को इस कथामें अच्छी तरह व्यक्त कर दिया गया है।

अब यह देखना है कि उत्कल के लोकाचार पर जैनधर्मका प्रभाव कहा तक पड़ा है। पहले जैनधर्म के कुछ मूल लक्षणों का विवेचन करलेना आवश्यक होगा। कल्पवट इस धर्मकी एक विशिष्ट मान्यता है। सभ्यताके आदिकाल में लोग कृषि जीवी नही थे और इसी कल्पवृक्ष के प्रभावसे जीवनकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते थे। यह कल्पवृक्ष जब अन्तर्हित हो गया और लोगो को खानेपीने का अभाव हो गया तब आदि तीर्थंकर ने लोगो को कृषि, पशुपालन तथा अन्यान्य उद्योगोकी शिक्षाएँ दी[४]। कल्पवटकी पूजा जैनों का एक महान अनुष्ठान है। इसीके अनुकरण से पौराणिक हिन्दुओं ने कामधेनु की कल्पना की थी, इसी कामधेनु (सुरभि) के लिये विश्वामित्र ने बशिष्टके आश्रम पर आक्रमण किया था जैनोंके इस अनुष्ठानमें हिन्दुओ को प्रेरित किया जिससे प्रयागके कल्पवट की कल्पना हुई। सिर्फ इतना ही नही, कल्पवटसे कूदकर प्राणत्याग करने की प्रथाका सम्बन्ध जैनों के प्रायोपवेशनमें प्राणत्याग करने के साथ सम्बन्धित है, हिन्दू पुराणों में कल्पवटके प्रभूत महात्म्य वर्णित है। इस सम्बन्ध में पुराणो में कई प्रकार के आख्यान भी मिलते हैं। जैनो के कल्पवट की धारणा ने हिंदू धर्म को कितना प्रभावित किया है, प्रयाग के कल्पवट की कथासे यह प्रमाणित होता है। इस कल्पवटके निकट कामना करके असाध्य साधन हो गया। उत्कलमें भी कल्पवटका महत्व अत्यधिक है। यहां लोग वटवृक्षकी उपासना करते हैं। वटसे जो ओहर निकलता है उसे शिवकी जटा समझी जाती है। जैनो के प्रभाव

४ आदि पुराण तीसरा अध्याय, ३० पृष्ठ।

के कारण पुरी, भुवनेश्वर तथा अन्य मन्दिरोंमे कल्पवटका रोपण किया गया है। ऐसा न होता तो मन्दिरके भीतरे वटवृक्ष रोपण करने का कोई भी दूसरा आध्यात्मिक कारण नही था।

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव हिन्दू पुराणोंमें विष्णु और शिव अवतार माने जाते हैं। उन्होंने अपने मुखमें पत्थर भरकर शेष जीवन कैलाश शिखर पर बिताया था। अन्तमें जब वंशवनमें दावाग्नि प्रज्वलित हुई उसीमें वे दग्ध हो गए। यह घटना फागुन कृष्ण १४शी के दिन हुई। इसीलिए जैनलोग इस तिथि का पालन करते हैं। कालक्रम मे हिन्दुओ ने भी इस तिरोभाव दिवस को एक व्रत माना और वे उसे व्रत विशेष के रूपमें मानते चले आ रहे हैं। यही व्रत शिव चतुर्दशी का जागर (उजागर) के नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऋषभदेव शिव अन्तर्भूत थे यह व्रत उसका एक अच्छा प्रमाण है। इस व्रतकी आधुनिक प्रवृत्ति जो भी हो, पर है यह एक जैन पर्व ही जो हिन्दू आचारमें ओत प्रोत हो गया है।

उड़ीसा जैनधर्मका एक प्रधान पीठस्थल है। यहा के प्रत्येक ग्राममें शिवालयकी स्थापना है। इन मन्दिरोंके पुजारी ब्राह्मणेतर (परिघा) जातिके ही लोग होते हैं। उत्कलकी पुरपल्लियों में शिव चतुर्दशी एक प्रधान पर्व है। सुदूर अतीत से, जैन पद्धति को हिन्दूधर्म ने आत्मसात किया है।

उड़ीसा का "विचित्र रामायण" एक पल्ली काव्य (लोक काव्य) है अथवा इसे एक काव्य भी कहा जासकता है। इससे भी सीताके मुखसे कविने किसी अलक्ष्य वटकी प्रार्थना करायी है।[५] उड़ीसा के कविकी इस मौलिकतामें भी जैनत्वका प्रभाव सन्निहित है। त्रिशूल और वृषभ शिव के चिर साथी हैं। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने भी यही चिन्ह धारण किया था। ऋषभ

५. हे बा ज्वट ! हे वटश्रेष्ठ !! मेरी विनती स्वीकार करो।

नाम ही वृषभ का प्रतिपद है।

जगन्नाथ जी के मंदिर के वेढ़ा (घेरा) में कोहली वैकुंठ के नाम से एक स्थान हैं। यह कोहली शब्द तामिल के कोएल से अथवा संस्कृतके कैवल्यसे आया है, विचारणीय प्रश्न है कि हिंदुओ से मुक्ति मोक्ष शब्दादि की तरह जैनधर्म का कैवल्य शब्द भी एकार्थ वाचक है।[६] वस्तुत. यह कैवल्य शब्द जैनधर्म का ही है जिसे उड़ियाने अपना बना लिया है। क्योकि प्राचीन हिंदू ग्रथोमें मोक्ष के अर्थ में कहीं भी कैवल्य शब्द का प्रयोग नही किया गया है।

जिन जिन तिथियोमें तीर्थङ्करोके गर्भावस्थान,जन्मतपस्या, ज्ञानप्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति हुई है, इन्द्रादि देवगण उन्हीं तिथियो मे उत्सव मनाते हैं। जैनधर्मी लोग भी पृथ्वी पर उन्ही तिथियो में चैत्रयात्रा करते है। चैत्य निर्मित रथ के ऊपर जिन देव की प्रतिमा रखकर नगर में परिक्रमा कराने की विधि की चैतयात्रा करते हैं। सुसज्जित हाथी और गीत-वादित्रो के साथ इस उत्सवका परिपालन होता है। अभिधान राजेन्द्र अनुमान विवरण में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

' (बट-मूल में, हाथ जोड कर व्याकुल हृदय से सीता ने प्रार्थना की)
अपनी परोपकारी वृति के कारण चतुर्दश लोक में तुम्हारी ख्याति हैं।
मेरी सास और मेरे श्वसुर, अयोध्या में मगल से रहें,
शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत वीर सुखपूर्वक राज्य पालन करते रहें।
अयोध्या निवासी सभी नर नारी आनन्द पूर्वक रहें,
मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हू, शत्रुओ का उपद्रव उनको न हो।
मैं विधवा और गणिता न होऊ और युग युग तक जीवित रहू !!
मेरे पिता परम पद की प्राप्ति करें, इससे अधिक और तुमसे क्या मागू।।
विचित्र रामायण।

६ पुरुषार्थ शून्याना गुणना प्रति प्रसव
कैवल्य स्वरूप प्रतिष्ठा वाचित शक्ति हन

पुरी और भुवनेश्वर में क्रमशः आषाढ शुक्ल २ या और चैत्र शुक्ल अष्टमी को रथयात्रा का उत्सव होता है। ये दोनों तिथियां पुण्य तिथियो के रूप में मानी जाती हैं। इन तिथियों में वार और नक्षत्र का विचार किए बिना सब तरह के शुभ कार्य किए जाते हैं इसीलिए इनको कल्याणक दिवस भी कहा जाता है। स्मृति शास्त्र में केवल पुण्य नक्षत्र युक्त तिथि में ही बलराम और सुभद्रा के साथ जगन्नाथ की स्थापना करके यात्रोत्सव की विधि है। किन्तु, वार नक्षत्र का विचार किए बिना शुभ कार्य का अनुष्ठान कही भी विहित नही है। इसी लिए स्मृति शास्त्र ने इसको कल्याणक दिवस के रूपमे स्वीकार नही किया। जो स्मृति सम्मत न होते हुए भी समाज में प्रचलित है वह निश्चय ही लोक व्यवहार मूलक है। इसका अन्वेपण करने पर जैन पुराणो में ऐसी प्रथा देखने में आती है। जैनों के मत में आषाढ शुक्ल द्वितीया प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का गर्भ कल्याणक दिवस है, अर्थात इसी तिथि में ऋषभदेव गर्भमें आविर्भूत हुए। जैनोमे प्रति कल्याणक दिवसमें चैत्रयात्रा यानी रथयात्रा का विधान हैं। जिस तरह जैन लोग ऋषभदेव को शिव जी का प्रतीक मानते हे ठीक उसी तरह उनको जगन्नाथजीका भी प्रतीक मानते हैं, अनुमानसे मालूम पडता है, इसीलिए उसी दिन जगन्नाथ जी की रथयात्रा अनुष्ठित होती है। कुछ जैन पुराणो में ऋषभदेव की जन्म तिथि आषाढ शुक्ल चतुर्थी मानी गयी है। परन्तु मुख्यतः उन पुराणो के अनुसार ऋषभदेव ६ मास ४ दिनो तक गर्भ में थे। इसलिए उनकी जन्म तिथि चैत्र शुक्ल अष्टमी को होना चाहिये। वह दिन ऋषभदेव का जन्म कल्याणक दिवस है। अतः उस दिन भुवनेश्वर में शिव जी का रथयात्रा-उत्सव ठीक होता है। संस्कृत शास्त्रों मे अशोकाष्टमी को रथयात्रा का उत्सव मनाने

का विधान नही है। केवल शोक रहित होने के उद्देश्य से उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र में आठ अशोक कलिकाओं के साथ जल का पान करने की विधि है। इसलिए इसे ऋषभदेव के जन्म दिन के रूप में स्वीकार करने पर जैन सम्मत रथयात्रा से संगति बैठती है।[७]

श्री जगन्नाथ जी की स्नान यात्रा की तरह जैन प्रतिमाओं का अभिषेक-स्नान या स्नान यात्रा भी अनुष्ठित होती है। छत्र, चमर, सिंघा, वाद्यों के साथ अष्ठ कुंभो के द्वारा जैन देवताओं का अभिषेक होता है। विशेषतः "जिन" प्रतिमाओं की आंखो को तूलिका से पुनः रंगने की जो विधि जैन शास्त्रो मे मिलती है, वह जगन्नाथादि मूर्तियो को स्नान कराने के उपरांत उनको फिर से रंगने की प्रथा उपर्युक्त जैन शास्त्रो की बातो का स्मरण दिला देता है। इसी समय चक्षु का नवीकरण भी होता है, जगन्नाथ जी की गोलाकृति आंखो को छोड़ शेष कुछ रंगने के लिए रह नही जाता, उनकी मूर्ति ही चक्षु प्रधान है। जैन अभिधान राजेन्द्र से मालूम होता है कि जगन्नाथ शब्द मूलतः जैन है और यह जिनेश्वर (आदिनाथ-ऋषभदेव) का नामांतर मात्र है।[८] जगन्नाथ जी की

७ भुवनेश्वर में लिंगराज की चलती प्रतिमा चंद्रशेखर को अशोकाष्टमी के दिन एक रथ पर बैठा कर एक मील दूरवर्ती रामेश्वर मंदिर तक ले जाकर कुछ दिनों तक वहां रखने के पश्चात पुन. मुख्य मंदिर में उन्हें लौटाया जाता है। यह रथ एक चक्का वाला होता है और उसे रुक्मिणी रथ के नाम से पुकारा जाता है। जिस ओर यह रथ जाता है उस ओर से फिर उसका मुख घुमता नही है - वाहुडा (लौटने) के दिन मुख भाग की ओर कलशो को पीछे की ओर सज्जित करके शिव जी को लौटाया जाता है।

८ अभिधान राजेन्द्र चतुर्थ खंड १३८२

रथयात्रा ऋषभदेव के रथोत्सव से मिलती-सी है, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। उल्लेखनीय है कि यह रथयात्रा श्रीकृष्ण जी की घोषयात्रा नही है। घोषयात्रा मे फिर बाहुड़ा (लौटना) नही होता है।

कल्पवृक्ष की साम्यता के बारे में भी पहले कहा जा चुका है। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि श्री जगन्नाथ जी का नीलचक्र श्री ऋषभदेव के धर्मचक्र का ही सकेत स्वरूप है। ऋषभदेव की पूजा जहाँ कहीं भी होती है उसे चक्रक्षेत्र कहा जाता है। आबू पहाड़ के क्षेत्र को इसीलिए चक्रक्षेत्र के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ तक कि कटूमेर जिला स्थित आनन्दपुर सबडिविजन के जिस स्थान में पहले ऋषभदेव का पूजापीठ था उस स्थान को भी चक्रक्षेत्र के नाम से पुकारा जाता है। पुरी को चक्रक्षेत्र के नाम से पुकारने में वैष्णव धर्म का प्रभाव जहाँ तक भी हो, पर जैन ऋषभदेव के पूजापीठ होने के कारण ही पुरी का ऐसा नाम पड़ा इस में सदेह नहीं है। इन सारे प्रमाणो पर गभीरता पूर्वक चिंतन करने पर श्री जगन्नाथ जी को आनुष्ठानिक रूप से जैन प्रतिमा ही मानना पड़ेगा।

१ नवभारत मार्च, १६५१ का अंक देखें।

१. उड़ीसा की जैन-कला

भुवनेश्वर से दक्षिण-पश्चिम दिशामें खण्डगिरि और उदयगिरि नामक दो छोटे-छोटे पहाड़ हैं। उनकी ऊँचाई क्रमशः १२३ फीट और ११०फीट है। उदयगिरिके नीचे एक वैष्णव मठ भी है। ये पहाड़ छोटी-छोटी गुफाओं से परिपूर्ण हैं। उदयगिरि व खण्डगिरिमें १६ तथा उनके निकटमें ही नीलगिरि नामक पहाड़ में ३ गुफायें देखनेको मिलती हैं। २० वी शताब्दीसे प्राय: १६ सौ वर्षों पूर्व हो अधिकांश गुफायें जैन सम्राट् खारवेल और उनके परिवार वालों के द्वारा निर्मित की गईं थीं। शैवधर्मका केन्द्र स्थान भुवनेश्वर इसके इतने निकट है कि जैनधर्म किस प्रकार अपने स्थानमें जम सका, इस प्रश्न का लोगों के मनमें उठना स्वाभाविक ही है। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में शैवधर्म खूब सम्भव है कि कलिंग में नहीं फैला हो तथा ऐसा मालूम पड़ता है कि जैनधर्म की वृद्धिमें रुकावट डालनेके लिये ब्राह्मण धर्मके परिपोषक वर्गने भुवनेश्वर को अन्तमें प्रचारके उपयुक्त स्थान समझकर ग्रहण किया हो।

खण्डगिरि और उदयगिरि आदिमें स्थित गुफाओंका स्थापत्य दक्षिण भारतमें वास्तव में एक दर्शनीय वस्तु है। इसीके कारण प्रतिवर्ष भारतसे सैकड़ों ऐतिहासिक विद्वानों तथा पर्य्यटकों का यह आकर्षण केन्द्र रहा है। उदयगिरि की गुफाओं के मध्यमें रानी हसपुर नामक गुफा ही सबसे बड़ी है। इसकी बनावट भी बड़ी सुन्दर है। इसको रानी गुफा भी कहा जाता

है। इसकी कोठरिया दो पक्तियो में सजी हुई हैं। गुफाका दक्षिण-पूर्व पार्श्व खुला हुआ है। नीचेकी पक्तियोमें आठ एवं ऊपर की पक्ति में छ. प्रकोष्ठ हैं। इसके ऊपर की मजिल में स्थिति विस्तीर्ण बरामदा वास्तविक रानी गुफाका एक प्रधान विशेषत्व रखता है। यह बीस फीट लम्बा है। इन्ही बरामदों में प्रतिहारियोकी प्रतिमूर्तिया अति स्पष्ट रूपमें खोदी गई हैं। नीचे के मजले में स्थित प्रहरी एक सुसज्जित सैनिक के समान दिखाई पडता है। बरामदे की एक विशेषता यह भी है कि वहां पर बैठने के लिये अनेक छोटे छोटे उच्चासन निर्मित किये गये हैं। पश्चिम भारत की प्राचीन गुफाओ में इसी तरह के आसन दिखाई पडते है। बरामदे की छतको साधने के लिये बहु सख्या में प्रस्तर स्तभ बनाये गये है। किन्तु दुर्भाग्य-वश उनमें से अधिकाश स्थम्भ जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं। रानी गुफासे केवल तीन ही प्राचीन स्तम्भ समय की गतिके विरुद्ध सग्राम कर यथेष्ठ क्षतविक्षत होकर अबतक भी बचे हुए है।

गुफाओ के भीतर प्रवेश करने के लिये भी द्वार बनाये गये हैं। बड़ी-बडी गुफाओ के निमित्त एक से अधिक द्वार निर्मित किये गये है। ऐसा हमें देखने को मिलता है। इन्ही द्वारो के ऊपर के भागमें जैनधर्मके नाना प्रकार के उपाख्यान खोदे हुए थे। ये उपाख्यान अति प्राञ्जल रूपमें वर्णित हो सकते है; किन्तु उस सम्बन्धमें गवेषण करके प्रत्येकका तथ्य सग्रह करना सहज नही है। प्रत्येक चित्रमें सामजस्य-सा मालूम पड़ता है, किन्तु ऊपर के मजलेमें शिल्पकारने जिस रीतिसे दृश्योंका वर्णन किया है, नीचे के मजलेमें ठीक उसी रीतिसे नही किया गया है। दोनों मजलेमे आपसमे एक विराट पार्थक्य बोध होता है इस मजलेके दृश्योमें एकत्व मालूम पडता है। खुदी हुई मूर्तियो के बीचमें परस्पर सम्बन्ध भी अति स्पष्ट मालूम पड़ता है। मूर्त्तियाँ

वास्तविक जीवित-जागृत प्रतिमा-सी मालूम पडती है।

नीचे के मजलेमें मूर्तियां इतनी उच्चकोटि की नहीं है उनमें अप्राकृतिकता और अपरिकल्पता पूर्ण मात्रामें मालूम पडती हैं। किन्तु रानी गुफामें स्थापित मूर्तियो से वे अवश्य प्राचीन हैं; किन्तु स्थान विशेष के कारण हमें वहां खूब उच्च कोटि के स्थापत्य भी देखने को मिलते हैं इसलिए नीचे की मजलें की कला ऊपर मजले की अपेक्षा अधिक पुरानी है। इसमें भूल नहीं है। रानी गुफाके दूसरे मंजले में स्थित मूर्तियो की कलामें हम जो पार्थक्य देखते हैं, वह पार्थक्य समय की दूरताके लिये नही मालूम पड़ता है बल्कि भिन्न२ शिल्पकारों की नियुक्तिके द्वारा इसे पार्थक्य (असमानता) की सृष्टि हुई है। नीचे के मजलेके लिये जो शिल्पकार नियुक्त किये गये थे, वे मालूम पडता हैं। कुछ निकृष्ट धरण के थे। इस विषय पर आवश्यक प्रत्यक्ष प्रमाण मिलना सहज नही।

इस विषयमें सर जोन मार्शलका कहना है कि ठीक मंचपुरी गुफाके समान नीचे का मजला और ऊपर का मजला निर्माण करते समय का व्यवधान बहुत थोडा था, ऐसा मालूम पड़ता है कि गुफाकी कला तथा उसकी स्थापना के ऊपर अवश्य ही मध्य भारतीय तथा पश्चिम भारतीयों का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। इस प्रभावके द्योतक हम जीवित दो प्रमाण पाते हैं। ऊपर के मजलेमें स्थित एक द्वार रक्षक, जो ग्रीक है अथवा वह यवन वेषभूषा में सुसज्जित हुआ है।

उसीके निकटमें एक सिंह तथा उसके आरोही की गठन में भी पश्चिम एशिया के कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु नीचे के मजलेमें स्थित प्रहरी का रूप तथा परिपाटी में अविकल भारतीय ढग मालूम पडता है; कारण यहा शिल्पकी निपुण्यता अपरिपक्व हैं। वह भारतीय नियमानुसार सीमावद्ध है।

मथुरा तथा गान्धारकला का प्रभाव रानी गुफा पर खूब नजर आता है। उदयगिरि के निम्न देशमें स्थित वैष्णव मठके पास जय-विजय गुफाको जानेके रास्तेमें कितनी छोटी-२ गुफाएँ देखने को मिलती हैं। वजादार गुफा इनमें अन्यतम है। वजादार गुफामें दो प्रति छोटे प्रकोष्ट है। प्रकोष्ठके पासमें बरामदा है। छोटी हाथीगुफा तथा अलकापुरी नामकी गुफा भी खूब पासमें ही दीखती है। छोटी हाथीगुफामें एक प्रकोष्ठ है तथा इसके द्वार पर दो हाथी के चित्र खोदे हुए हैं।

अलकापुरी को राजेन्द्रलाल मित्र और फर्गुसन ने स्वर्गपुरी नाम दिया है। इसके ऊपर मंजिलमें दो कोठरिया और नीचेके मंजलेमें एक बडी कोठरी है। इनकी छत्त व बरन्डा खूब सुन्दर निर्मित हुई है। स्तम्भमें मस्तक पर पक्षयुक्त सिंह मूर्ति और नवगुणकी मूर्ति आदि खोदी हुई हैं।

जय-विजय गुफा मे दो प्रकोष्ठ तथा पास में ही एक बरामदा है। बरामदे के दक्षिण पार्श्व मे एक स्त्री प्रहरी और बाँये पार्श्व में एक पुरुष प्रहरी की मूर्तिया है। दो द्वारो के ऊपर भाग में यक्ष की मूर्त्ति खोदी हुई है। दो यक्षो के बीच में पवित्र पिप्पली वृक्ष की दो पुरुष और दो स्त्री पूजा करते हुये अंकित हं। स्त्री वर्ग पूजा की सामग्री एक २ पात्र में लिये हुए हैं। पुरुष वर्ग के बीच एक पुरुष हाथ जोडकर खडा है, अन्य पिप्पली वृक्ष की एक शाखा में पुष्पमाल अर्पित करते हैं।

जय विजय तथा मचपुरी के बीच एक अर्द्ध वृत्ताकार में ठकुरानी गुफा, पणस गुफा तथा पातालपुरी गुफा है। पणस गुफा को राजेन्द्रलाल मित्र ने गोपालपुरी नाम दिया है। इस के पास स्थित बरामदेमें स्थित स्तम्भके ऊपर भागमें जानवरो की मूर्त्तिया खोदी गई है। पातालपुरी को मित्र ने मचपुरी नाम दिया है।

अर्द्धवृत्त में शेष मंचपुरी और स्वर्गपुरी या वैकुण्ठपुरी नामकी दो गुफाएं हैं। इनगुफाओं में जो शिलालेख है, उसका ऐतिहासिक मूल अपरिमेय है, कारण चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा के शिलालेख के साथ उनका सम्पर्क है।

मंचपुरी गुफा के सम्मुख एक विस्तृत प्रागण है। उसी के पास में बरामदा तथा दक्षिण पार्श्व में स्थित बरामदे में दो-दो मूर्तियां है। प्रधान बरन्डे की छत के सम्मुख नाना प्रकार की मूर्त्तिया खोदी गई हैं। वे सब वर्त्तमान अस्पष्ट हो गई हैं। प्रकोष्ठ के मध्य में जाने के लिये जो पांच द्वार निर्दिष्ट हैं उन्ही द्वारो तथा पार्श्व स्तभो में वृक्ष, लता, पुष्प आदि का चित्रण अति सुन्दर रूप में अकित है।

इन शिलालेखो से मालूम पडता है कि सब गुफाएं महामेघवाहन कदम वा कुजप के द्वारा निर्मित हुई थी। ये निश्चय ही खारवेल के बशधर होगे।

फर्गुसन ने इस गुफा को पातालपुरी नाम दिया है। मंच-पुरी या पातालपुरी के पश्चात् स्थित पहाड़ में स्वर्गपुरी गुफा बनी है। मित्र और फर्गुसन के अनुयायी इनको वैकुण्ठपुरी भी कहते हैं। इसके विराट प्रकोष्ठ के पास एक बरामदा है। दक्षिण पार्श्व में एक छोटा प्रकोष्ठ है। बरामदे की छत अने-कांश में टूट गई है। इसलिये स्तंभ या प्रहरी की मूर्त्ति आदि थी, यह नष्ट हो गई है। उसमें स्थित शिलालेख मे मालूम पड़ता है कि कलिंग के जैन-संन्यासी तथा अर्हत के लिय राजा ललाक की दुहिता हाथी साहस की पौत्री के द्वारा निर्मित हुई थी। यह थी खारवेल की प्रधान रानी।

गणेश-गुफा के भीतर की दिवाल पर गणेश जी की प्रति-मूर्त्ति खोदी हुई है। इस गुफा में दो प्रकोष्ठ और एक बरामदा है। गुफा में प्रवेश करने के दोनो पार्श्व में दो हाथियों की

मूर्त्तिया निर्मित की गई हैं। हाथी पदम् मृणाल लेकर प्रस्फुटित पदम्के ऊपर खड़े हैं। बरामदे की छत को स्थिर रखने के लिये जो स्तंभ थे, वे अनेक टूट फूट गये हैं। वाम पार्श्व के स्तंभ में ४॥ फुट की ऊँचाई पर एक प्रहरी मूर्त्ति खोदी गई है। प्रहरी के पैर वस्त्र से ढँके हुए नही हैं। वे दाहिने हाथ मे एक वर्छा लेकर खड़े हुए हैं। उनके मस्तक के ऊपर एक यक्ष की मूर्त्ति है। गुफा को दो भागों में विभक्त करने के लिये एक दीवाल है। प्रत्येक प्रकोष्ठ में दो द्वार हैं। द्वार के ऊपर भाग में रेलिंग है। रानी गुफा में जिस तरह के चित्र खोदे गये हैं, यहाँ पर भी उसी तरह रेलिंग में अति सुन्दर दृश्य और चित्रांकन किया गया है।

प्रथम दृश्य में एक वृक्ष तथा एक पुरुष बिछौने के ऊपर सोया प्रतीत होता है। निकट मे एक स्त्री पुरुष के पादमर्दन करने के समान मालूम पड़ती है। किन्तु दूसरा दृश्य दूसरे प्रकार का है। वहां पर युद्ध का वर्णन किया गया है। शेष दृश्य में फिर एक पुरुष है। एक स्त्री के साथ बातचीत करते हुए देखते हैं। ये उपाख्यान रानी गुफा के ऊपर दृश्य के प्राय: समान है। वहा पर मालूम पड़ता है कि कोई अपहृता नारी को उद्धार करने का विषय प्रदर्शित किया गया है। सैनिक वर्ग विदेशी मालूम पडते हैं। भवदेव सूरीके पार्श्वनाथ चरित्र में वर्णित हुआ है कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने किसी कन्याका कलिंग के यवन राजा के हाथ से उद्धार किया था। इस गल्प में यदि कुछ सत्यताहो सकती है, तब निश्चय ही गणेश गुफाके कठिन प्रस्तर के ऊपर रूप रेखा होगी। कारण गणेश गुफा जैनियो की कीर्त्ति होने के कारण जैनधर्म के किन्ही भी तीर्थंकर का जीवन वहा पर चित्र के आकार में उपासको के सामने प्रदर्शित होना अति स्वाभाविक है। उदयगिरि के मध्य भाग में, घानर

गुफा, हाथी गुफा, व्याघ्र गुफा और जम्बेश्वर गुफा विद्यमान है। पहाड़ के पृष्ठ भाग को काटकर समतल किया गया है। समतल स्थान के केन्द्र स्थल में एक क्षुद्र मंडप है। इस मंडप में अनेक समय से छोटे २ मन्दिरों का भग्नावशेष भी मालूम पड़ता है। बाल धर की गुफा १४½ फीट लम्बी और इसके लिये तीन प्रवेश द्वार है। बरामदेमें बैठनेके लिए बंदोबस्त किया गया है। वाम-पार्श्व में स्थित स्तंभ के शरीर में, सैनिको की मूर्त्ति खोदी हुई है। सैनिक के मस्तक पर एक हाथी की मूर्त्ति भी दिखाई पड़ती है।

हाथी गुफा का गठन अति असाधारण है। इसमें कोई निर्दिष्ट आकार नहीं है। हाथी के ४ प्रकोष्ठ और स्वतंत्र बरामदा भी था। गुफा का अन्तर्देश ५२ फीट लम्बा और २८ फीट चौड़ा है। द्वार की ऊँचाई ११½ फीट है। इसमें खारवेल का विश्व विख्यात शिलालेख है। इस शिलालेख में उनका जीवन चरित्र लिपिबद्ध हुआ है। समय २ पर यह शिलालेख असम्पूर्ण के समान बोध होता है।

हाथी-गुफा के पश्चिम में ८ गुफाएँ है। इसके ठीक ऊपर पार्श्व में सर्प गुफा अवस्थित है। यह गुफा सर्प के फण के समान दीखती है। सर्पफण जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रतीक है। यह गुफा बहुत छोटी है। इसकी ऊँचाई केवल ३ फीट है। यहां पर दो शिलालेख है। वे बिना भूल हुए पढ़ना संभव नहीं, क्योंकि अनेक अक्षर नष्ट हो गये है। सर्पगुफा के उत्तर पश्चिम की ओर व्याघ्र गुफा है। इसका अग्रभाग शार्दूल की मुखाकृति के समान दिखाई पड़ता है। व्याघ्र गुफा केवल ३१ फीट ऊँची है, तथा द्वार में स्थित शिला लिपि के द्वारा मालूम पड़ता है कि वह गुफा जैन ऋषि सुभूति की थी।

जम्बेश्वर गुफाकी ऊँचाई केवल ३ फीट ८ इंच है। इस

अलकापुरी या स्वर्गपुरी गुफा
(खण्डगिरि उदयगिरि)
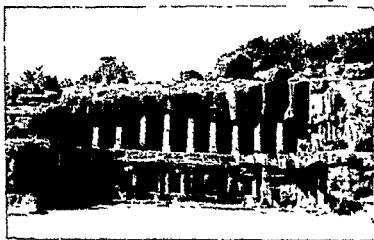
खण्डगिरि मे रानीहसपुर गुफा

गणेश गुफा
(खण्डगिरि उदयगिरि)

ऊपर की मन्जिल में उत्कीर्ण जैन उपाख्यान

रानीगुफा में उत्कीर्ण दृश्य।

ऊपर की मंजिल में उत्कीर्ण जैन उपाख्यान

ऊपर की मंजिल में उत्कीर्ण जैन उपाख्यान के दृश्य।

नीचे की मंजिल मे एक दरवान की मूर्ति

ऊपरी मन्जिल में उत्कीर्ण जैन उपाख्यान

छोटी हाथी गुफा खण्डगिरि उदयगिरि
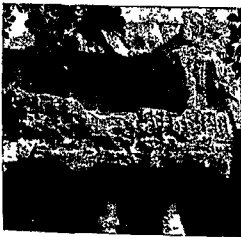
मञ्चपुरी या स्वर्गपुरी गुफा
(खण्डगिरि उदयगिरि)

वरामदे मे दक्षिण पार्श्व पर नारी दरवान

खडगिरि उदयगिरि पर्वत पर उत्कीर्ण तीर्थंकर मूर्तियां
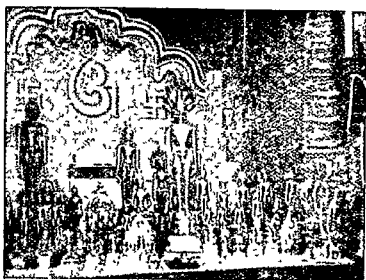
श्री जैन मठ कटक में विराजमान तीर्थंकर मूर्तियाँ।

धातु की जिनमूर्तियाँ
(कटक के जैन मठ में स्थित)
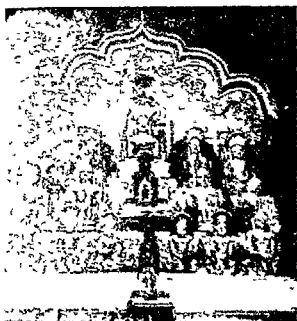
श्री दि० जैन मन्दिर कटक की धातुमय जिन-प्रतिमायें।

चउद्वार मंदिर में जिन मूर्ति पास में डॉ० साहु की माता श्री [illegible] बैठी है)

भ० पार्श्वनाथ की मूर्ति

(कटक के जैन मंदिर में स्थित)

प्रम और अन्तिम तीर्थंकर की मूर्तियाँ
(दि० जैन मंदिर कटक)

श्री स्वप्नेश्वर शिवमन्दिर में
भ० ऋषभदेव की मूर्ति

भ० पद्मप्रभ की मूर्ति

(जैन मठ कटक)

श्री सहस्रकूट जिन चैत्य
(कटक के जैन मंदिर में)

चटद्वार माताजी के मन्दिर में
ऋषभदेव की मूर्ति (खंडगिरि)

भ० पार्श्वनाथ की मूर्ति
(अयोध्या–नीलगिरि जिला बालासोर)

भ० शान्तिनाथ की मूर्ति
(भुवनेश्वर म्यूजियम)

तीर्थंकर एव शासनदेवी की मूर्तियाँ।
(अयोध्या–नीलगिरि जिला बालासोर से प्राप्त)

भ० पार्श्वनाथ की मूर्ति
(अयोध्या–नीलगिरि जिला बालासोर से)

भ० ऋषभ की मूर्ति
(अयोध्या–नीलगिरि जिला बालासोर से प्राप्त)

अतस पुर से उपलब्ध जैन मूर्ति

भ० ऋषभ, भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर की पाषाण मूर्तियाँ।
(मयूरभज मे प्राप्त)
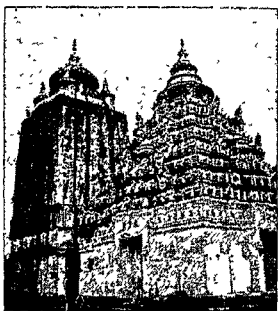
कटक का प्राचीन दि० जैन मंदिर
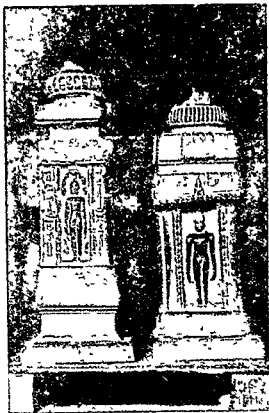
कटक के प्राचीन दि० जैन मदिर में विराजमान
तीर्थङ्कर भ० के चैत्य ।

गुफामें जानेके लिये दो द्वार हैं। द्वारके ऊपर ब्राह्मीलिपिका शिलालेख है। उससे मालूम पड़ता है कि यह महा मयूर और उनकी स्त्रीके लिये निर्मित की गई थी।

व्याघ्र गुफासे कुछ दूर तथा उदयगिरि की ५० फीट ऊंची जो तीन गुफाएं,वे सब हरिदास गुफा है। वे जगन्नाथ गुफा और रोशई गुफाके नामसे पुकारी जाती है। हरिदास गुफामें केवल एक प्रकोष्ठ है, जो प्रायः १० फीट लम्बा है किन्तु इसमें तीन प्रवेश द्वार है। इसमे खुदी हुई लिपिसे मालूम पडता है कि यह कोठाजय के क्षुद्र कर्मके लिये बनाई गई थी। जगन्नाथ गुफा के भीतर जगन्नाथ जी की मूर्ति अंकित होने के कारण उसके नामानुसार उसका नाम करण हुआ है। इसके विस्तीर्ण प्रकोष्ठ के पास बरामदा और तीन द्वार है। द्वारमें कोई भी चित्र अंकित नहीं है। यह अति सुन्दर और अनाडम्बर है। इसके पार्श्वमें स्थित गुफाको रोषई गुफा कहा जाता है। इसमें केवल एक प्रवेश द्वार है। खण्डगिरिकी गुफाका वर्णन उत्तरकी तरफसे शुरू होता है। उत्तर में तोतागुफा है। गुफाके एक स्थान पर तोता पक्षीका चित्र खोदे जानेके कारण उसका नाम तोता गुफा पड़ा है। इसका प्रकोष्ट १६ फीट ४ इन्च लम्बा और ५ फीट ६ इन्च ऊचा है। प्रवेश करने के लिये ३ द्वार है। दीवारमें एक शिला-लेख खुदा हुआ है। इसके नीचे एक लिपि पांच लाइनोंमें लिखी हुई है। तोताके ६फीट नीचेजो गुफा है,जो उसमें भी तोता पक्षी का चित्र है। इसलिए इसको भी तोता गुफा कहते हैं। बरामदे के दोनों ओर सेनिकों की प्रतिमूर्ति है। प्रकोष्ट १० फीट६इ० लम्बा और ४फी० ४इ०चौड़ा है। इसलिए इसमें दो प्रवेश द्वार है। इन द्वारोंमें जो शिलालेख है, उनसे जाहिर होता है कि इस गुफामें कुसुम नामका एक सेवक रहता था।"

(२) तोताके पूर्व भागमें खण्डगिरि गुफा है। उसके नीचे

से ऊपर जाने पर पहले खण्डगिरि गुफामें प्रवेश करना पडता है। गुफाकी निचली मजिलमें जो प्रकोष्ट है, उसकी ऊँचाई ६ फीट २ इन्च है। और ऊपरी मंजिल की ऊचाई ४ फीट८ इन्च हैं। इसके अलावा नीचे की मजिल में एक छोटी टूटी-फूटी गुफा है। ऊपरी मंजिलके प्रकोष्ट के निकट में एक छोटी कोठरी मालूम पडती है। उस छोटी गुफा में पतित-पावन की मूर्ति अंकित है। खण्डगिरि गुफाके दक्षिण तरफ घानगढ़ नामक एक दूसरी गुफा है। उस गुफामें स्थित शिलालेख आजतक भी पढा नही गया है। यह आठवी या नवी शताब्दीमें लिखा गया है; ऐसा अनुमान किया जाता है। इसके दक्षिण दिशा की ओर नवमुनि गुफा, वारभुजि गुफा और त्रिशूल गुफा है। नवमुनि गुफामें दो प्रकोष्ठ हैं। इस गुफामें १० वी शताब्दी का एक शिलालेख है। इसमें जैनमुनि शुभचन्द्र का नाम उल्लेख किया है। गुफाके दक्षिण पार्श्वमें स्थित जैनियोके २४ वें तीर्थंकरकी मूर्ति खोदी गई है। यही नवमुनि गुफाकी विशेषता है।

जैनधर्म में हम लोग साधारणतः २४वें तीर्थंकर का सधान पाते हैं। उनकोही नवमुनिगुफामे रूपदान किया गया है। सबों की एतिहासिक स्थिति तथा प्रमाण पाना सभव नही हैं। उन की जीवनी अनेक समय से कल्पनिक और रहस्य जनक है। यह बात हमें जैनशास्त्र से प्रतीत होती है। बहुत दिनो तक जीवित रहकर ये तीर्थंकर जैनधर्मकी अहिंसा वाणी का प्रचार किये थे। इन्ही २४ सो के जीवन काल की घटना को एकत्रित करनेपर भारत का प्राचीन ऐतिहासिक काल ऐतिहासिक युग से भी आगे बढ़ जायगा। इसलिये कितने तीर्थंकर समसामयिक थे ऐसे कितनो का विचार है, पर वह ठीक नही है।

जैनधर्म में ये तीर्थंकर सदा पूजनीय है। जैन तीर्थ स्थानो में जो २४ तीर्थंकरो की स्थापना हुई है, उनको एक प्रकार

सम्मान प्रदर्शन करने के लिए, किन्तु मन्दिर मे उनके बोधर्मे एक मूलनायकके नामसे स्वीकार किया जाता है। अन्य जैनियो के द्वारा वही मूलनायक परिवेष्ठित होकर मुख्य पूजा पाते हैं। वे ही मूलनायक कहकर मन्दिर में प्रधान देवता कहे जाते थे। मदिर में जिनेन्द्र की उच्चासना ही जैनधर्म का परम्परागत न्याय है। नवमुनि गुफा में पार्श्वनाथ को मूलनायक के रूप में पूजा की जाती है। यह २४ जैन तीर्थंकरो के मानसिक विकार और इन्द्रियोको जय करनेसे ही जैन धर्मावलम्बियोका नमस्य हुआ है। जैन लोगोने सन्यासी व्रतको शातिमय जीवनका प्रधान पथ समझकर ग्रहण किया था। जैन तीर्थंकर पद्मासन या कार्योत्सर्ग मुद्रा मे स्थित होकर शिव की मूर्त्ति के समान दिखाई देते है। यह सादृश्य अर्थहीन नही है। किन्तु यही सादृश्य को केन्द्र कर हम कह सकते है कि जैनियो के यौगिक आलम्बनको अवलम्ब करके शिव की प्रतिमूर्त्ति गठित हुई है।

यह इन्ही जैनतीर्थंकरो के भिन्न२ चिन्ह है। प्रत्येकका यक्ष और यक्षिणी या शासन देवता और ज्ञान प्राप्त वृक्ष भी भिन्न भिन्न हैं। कितने ही जिनेन्द्र उनके वश के प्रतीक को चिन्ह के रूप में ग्रहण करने से अनुमित होते हैं। दृष्टान्त स्वरूप इक्ष्वाकु वंश ऋषभ के प्रतीक रूप म व्यवहार करते थे।

ऋषभनाथके इसीवंश में जन्मलेने के कारण वृषभ उनका चिन्ह हुआ है। उसी प्रकार मुनिसुव्रत और नेमिनाथ का चिन्ह क्रमशः कूर्म और शख है।

प्रथम तीर्थंकर और आदि जिन ऋषभनाथ के सबध में किम्वदन्तियाँ और आख्यायिकायें है जो उनमें सत्यासत्य जानने का उपाय नहीं है। जैनियो के इतिहासमें भी इन्ही ऋषभनाथ या वृषभनाथको ही जैनधर्मका संस्थापक मानते है ऐसा वर्णनकिया जाता है। दिगम्बरो का आदि पुराण और हेमचन्द्र

का 'त्रिषष्टि शालाका पुरुष चरित्र' में यह वर्णन किया गया है। भागवत पुराण और अग्नि पुराणादि में वृषभनाथ को विष्णुका अवतार कहा गया है। किन्तु प्रकृत में देखने पर ऋषभदेव का शिवके साथ बहुत सादृश्य दिखाई पडता है। किन्तु ऋषभनाथ जैनधर्मके प्रचारकर्त्ता थे, ऐसा सन्देह होने का कोई कारण नही है। इसलिए बैलको उनका चिन्ह तथा गोमुख यक्षको बैलकी आकृतिपर और दक्षिणी चक्रेश्वरीको वैष्णवो के समान दिखानेकी चेष्टामें शिल्पीने मालूम होता है कल्पना की कि ऋषभनाथ शिव और विष्णु से बड़े हैं। ऋषभनाथ की प्रतिमा के सम्पर्क में जैनियो के शास्त्रो मे विशेष वर्णन कुछ नही है। तो भी प्रवचन सारोद्धारसे मालूम पडता है कि बैल जैनियो का प्रथम प्रतीक था। धर्मचक्र उनका दूसरा प्रतीक है। उन्होने न्योग्रोध या वटवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया था। उनकी प्रतिमूर्त्तिके दोनो पार्श्व में क्रमशः भरत बाहुबली नामसे दो पूजक होते है।

इन चौबीस तीर्थङ्करोका विशेष परिचयनिम्न प्रकार पढिये -

१. तीर्थङ्कर ऋषभदेव व आदिनाथ; जन्मस्थान-विनीतानगरी पिता-नाभिराजा माता-मरुदेवी; विमान- सर्वार्थसिद्ध, वर्ण-सुवर्णाभ; केवलवृक्ष -न्यग्रोघ; लाञ्छन-वृष यक्ष-गोमुख, यक्षी-चक्रेश्वरी अप्रतिचक्र, चउरिधारक-भरत और बाहुबली निर्वाण स्थल-कैलाश (अष्टापद) गर्भ अषाढ वदी २ जन्म व तप चैत्र वदी ६ केवल ज्ञान फाल्गुन वदी ११ निर्वाण माघ वदी १४

२. तीर्थङ्कर-अजितनाथ जन्मस्थान-अयोध्या, पिता-जितशत्रु माता-विजयमाता विमान-विजय; वर्ण-स्वर्णाभ, केवलवृक्ष-शाल, सप्तखड लांछन-गज; यक्ष महायक्ष, यक्षी-अजितबाला (श्वे०) रोहिणी (दि०) चउरीधारक-सगर-चक्री, निर्वाण स्थान स० शि० गर्भ जेठ वदी १५, जन्म व तप माघ सुदी १०, केवल ज्ञान

पोह सुदी ४ निर्वाण चैत्रसुदी ५

३ तीर्थङ्कर-संभवनाथ, जन्मस्थान-श्रावस्ती, पिता-जितारी, माता-सेनमाता, बिमान-ग्रैवेयक, वर्ण-स्वर्णाभ केवलवृक्ष-प्रयाल, लाछन-अश्व, यक्ष-त्रिमुख, यक्षी-दुरितारि (श्वे०) प्रज्ञप्ति (दि०) चउरीधारक-सत्येवीर्य, निर्वाण स्थान सम्मेद शिखिर गर्भ फा० सुदी ८ जन्म कार्तिक सुदी १५, तप मगसर सुदी १५ केवल ज्ञान कार्तिक वदी ४ निर्वाण चै० सुदी ६

४ तीर्थङ्कर-अभिनन्दननाथ, जन्मस्थान-अयोध्या, पिता-सम्बर राज, माता सिद्धर्थी, विमान-जयंत वर्ण-स्वर्णी, केवल वृक्ष-प्रियंगु लांछन-कपि, यक्ष-नायक (श्वे०) यक्षेश्वर, (दि०) यक्षी कालिका (श्वे०) वज्रशुखला (दि०) चउंरिधारक, निर्वाण स्थान सम्मेद शिखिर-गर्भ-वैसाख सुदी ६ जन्म व तप माघ सुदी १२ केवल ज्ञान पोह सुदी १४ वैसाख सुदी ६

५ तीर्थङ्कर-सुमतिनाथ, जन्म स्थान-अयोध्या, पिता-मेघराज माता-मगला, विमान-जयत वर्ण-स्वर्णाभ, केवल वृक्ष-शाल लाछन-क्रौन्च, यक्ष-तुंबरु, यक्षी-महाकाली (श्वे०) पुरुषदत्ता (दि) चउ रीधारक मित्रवीर्य गर्भ श्रावण सुदी २ जन्म व तप चैत्र सुदी ११ केवल ज्ञान चैत्र सुदी ११ निर्वाण चैत्र सु० ११

६ तीर्थंकर-पद्मप्रभ, जन्मस्थान-कौशम्बि, पिता धर्तधिर, माता-सुसीमा, विमान-उवरिमग्रैवेयक, वर्ण-रक्ताभ, केवलबृक्ष-छत्राभ, लाछन-रक्तकमल, यक्ष-कुसुम, यक्षी-अच्युता (श्वे०) श्यामा (श्वे०) मनोवेगा (दि०), चवंरिधारक यमद्युतिः निर्वाण स्थान सम्मेद शिखिर गर्भ माघ वदी ६ जन्म व तप कातिक सुदो १३ केवल ज्ञान चैत्र सुदी १५ निर्वाण फागुन वदो ४

७ तीर्थंकर-सुपार्श्वनाथ, जन्मस्थान-वाराणसी पिता-प्रतिष्ठा-राज, माता-पृथ्वी, विमान-मध्यग्रैवेयक, वर्ण-स्वर्णाभ, केवल-वृक्ष-शिरीष, लाछन-स्वस्तिक यक्ष-मातग (श्वे०) वीरनन्दो

(दि०) यक्षी-शान्त (श्वे०) काली (दि०) चवंरीधारक धर्मवीर्य नि० स्थान स० शि० गर्भ भादों सुदी ६ जन्म व तप जेठ सुदी १२ केवल ज्ञान फा० वदी ६ निर्वाण फागुन वदी ७

८ तीर्थंकर-चन्द्रप्रभु,जन्मस्थान-चन्द्रपुरी, पिता-महासेनराज माता-लक्षणा, विमान- वैजयन्त, वर्ण-श्वेताभ, केवलवृक्ष-नाग-केशर, लांछन-चन्द्र, यक्ष-विजय श्वे. श्याम (दि०), यक्षी-भृकुटि (श्वे०) ज्वालमालिनी (दि०), चवरिधारक (धनवीर्य) नि० स्थान स० शि० गर्भ चैत्र वदी ५ जन्म व तप पोष वदी ११ केवल ज्ञान फा० वदी ७ निर्वाण फागुन सुदी ७

९ तीर्थंकर-सुवुद्धिनाथ, या पुष्पदन्त, जन्मस्थान-काकन्दी नगर व किस्किन्दानगर पिता-सुग्रीवराज, माता-रामराणी, विमान-अनन्तदेवलोक, वर्ण-श्वेताभ, केवल वृक्ष मल्ली व शाल लांछन-मकर (श्वे०) कन्कड़ा (दि०) यक्षी-सुतारका (श्वे०) महाकली (दि०) चवरिधारक-माधवटराज, नि० स्थान स० शि० गर्भ फा० वदी ९ जन्म व तप मगसर सुदी १ केवलज्ञान कार्तिक सुदी २ निर्वाण आसौज सुदी ८

१० तीर्थंकर-शीतलनाथ,जन्मस्थान-मदिलपुर व मद्रपुर,पिता-दुतरथराज, माता बदा, विमान-अच्युतदेवलोक, वर्ण-स्वणभ, केवलवृक्ष-विलवया प्रियगु लांछन-अस्वत्य, शवत्सपिप्वल, यक्ष-ब्रह्मा यक्षी अशोका (श्वे०) मानवी (दि०) चवरिधारक सिमंधराज नि० स्थान स० शि० गर्भ चैत्र वदी ८ जन्म व तप माघ वदी १२ केवल ज्ञान पोह वदी १४ निर्वाण आसौज सुदी ८

११ तीर्थंकर-श्रेयांशनाथ,जन्मस्थान-सिंहपुरी, पिता-विष्णुराज माता-विष्णु, विमान-अच्युतदेवलोग वर्ण-स्वर्णाभ, केवलवृक्ष तुम्वर व तण्डुका, लांछन स्वड्ग, यक्ष-यक्षेत (श्वे०), ईश्वर (दि०) यक्षी-श्रीवत्सादेवी (श्वे० (श्वे०) गोरी

(दि०) चबंरीधारक-त्रिपिष्टराज, नि० स्थल स० शि० गर्भ जेठ वदी ८,जन्म व तप फा० वदी ११,केवल ज्ञान माघ वदी १५ निर्वाण श्रावण सुदी १५

१२ तीर्थंकर-वासुपूज्य, जन्मस्थान-चम्पापुरी, पिता-वसुपूज्य माता-जया, विमान-प्रणत देवलोक, वर्ण-रक्ताभ, केवलवृक्ष-पाटलिक व कदब, लाछन-महिषी, यक्ष-कुमार, यक्षी-प्रचण्ड (श्वे०) चण्ड (श्वे०), गान्धारी (दि०),चबरीधारक-द्विपिष्ट वासुदेव, नि० स्थान मन्दारगिरि गर्भ अषाढ वदी ६ जन्म व तप फा०वदी१४ केवलज्ञान भादो वदी२ निर्वाण भादोसुदी१४

१३ तीर्थंकर विमलनाथ,जन्मस्थान-काम्पिल्यपुर (फरुखाबाद) पिता-कृतवर्मराज, माता-श्यामा, विमान-महाशर देवलोक, वर्ण-स्वर्णाभ, केवलवृक्ष-जम्बु, लाछन-वराह, यक्ष-सम्मुख (श्वे०) श्वेतम् (दि०),यक्षी-विजया (श्वे०),विदिता (श्वे०) वैरोति (दि०) चबरीधारक-स्वयमू वासुदेव, नि० स्थान स० शि० गर्भ जेठ वदी १० जन्म व तप माघ सुदी १४ केवल ज्ञान माघ सुदी ६ निर्वाण आषाढ वदी ६

१४ ती.अनंतजित अथवा अनन्तनाथ जन्मस्थान-अयोध्या, पिता-सिंहसेन, माता सुयशा, विमान-प्रणत देवलोक, वर्ण-स्वर्णाभ, केवलवृक्ष-अशोक या अश्वत्थ, लांछन-श्वेन (श्वे०) भल्लुक (दि०), यक्ष-पाताल, यक्षी-अंकुशा (श्वे०), अनन्तमति (दि०),चबरीधारक-पुरुषोत्तम वासुदेव,नि० स्थान स०शि० गर्भ कार्तिक वदी १ जन्म व तप जेठ वदी १२ केवल ज्ञान चैत्र वदी १५ निर्वाण चैत्र वदी ४

१५ तीर्थंकर-धर्मनाथ, जन्मस्थान-रत्नपुरी, पिता-भानुराज, माता-सुव्रता, विमान-विजय, वर्ण स्वर्णाभ, केवलवृक्ष दधि-पति या सप्तच्छद, लाछन-वज्रदंड,यक्ष-किन्नर, यक्षी-पन्नगा देवी (श्वे०), कन्दर्पा (श्वे०), मानसी (दि०),चवरीधारक-

पुण्डरिक वासुदेव नि० स्थान स० शि० गर्भ वैसाख सुदी ८ जन्म व तप माघ सुदी १३ केवल ज्ञान पोह सुदी १५ निर्वाण जेठ सुदी ४

१६ तीर्थङ्कर शांतिनाथ, जन्मस्थान-हस्तिनापुर, पिता-विश्वसेन, माता-अचिरा या ऐरा, विमान-सर्वार्थ सिद्ध, वर्ण-स्वर्णाभ, केवल वृक्ष-नंदी, लांछन-मृग, यक्ष-गरुड (श्वे०), किंपुरुष (दि०) यक्षी-निर्वाणी (श्वे०), महामानसी (दि०) चवरीधारक-पुरुष दत्तराज, नि० स्थान स० शि० गर्भ भादो वदी ७ जन्म व तप जेठ वदी १४ केवल ज्ञान पोह सुदी १० निर्वाण जेठ वदी १४

१७ तीर्थङ्कर-कुन्थुनाथ, जन्मस्थान-गजपुर, पिता-सुरराज, माता-श्रीराणी, विमान-सर्वार्थसिद्ध वर्ण-स्वर्णाभ, केवलवृक्ष तिलकतरु या भिल्लक, लांछन-अज यक्ष-गन्धर्व, यक्षी-अच्युता (श्वे०) वला (श्वे०), विजया (दि०), चवरीधारक-कुनाल, नि० स्थान स० शि० गर्भ श्रावण वदी १० जन्म व तप वैसाख सुदी १ केवल ज्ञान चैत्र सुदी ३ निर्वाण वैसा० सु० १

१८ तीर्थङ्कर-अरहनाथ, जन्मस्थान गजपुर, पिता-सुदर्शन, माता देवीराणी, विमान-सर्वार्थसिद्ध, वर्ण-स्वर्णाभ, केवल-वृक्ष-आम्र, लांछन-नन्द्यावर्त (श्वे०) मीन (दि०) यक्ष-यक्षेत (दि०), श्वेन्द्र (दि०), यक्षी-धरणी देवी (श्वे०), अजिता (दि०), तारा (दि०), चवरीधारक-गोविन्दराज, नि० स्थल स० शि० गर्भ फागुन सुदी ३ जन्म व तप मगसर सुदी १४ केवल ज्ञान कार्तिक सुदी १२ निर्वाण चैत्र सुदी ११

१९ तीर्थङ्कर-मल्लिनाथ, जन्मस्थान-मिथिला या मथुरा, पिता-कुम्भराज, माता-प्रभावती, विमान-जयन्त देवलोक, वर्ण-नीलाभ, केवलवृक्ष—अशोक; लांछन—कलश; यक्ष कुबेर; यक्षी—वैराती, श्वे०) धरण प्रिया (श्वे) ; अपरा जिता [दि०]

चऊंरीधारक—सुलुमराज, नि० स्थान स० शि० गर्भ चैत्र सुदी १ जन्म व तप मगसर सुदी ११ केवल ज्ञान पोह वदी २ निर्वाण फागुन सुदी ५

२०. तीर्थंकर मुनिसुव्रत, जन्मस्थान—राजगृह, पिता—सुमतिराज; मात—पद्मावती; विमान—अपराजित देव लोक, वर्ण—कृष्णाभ, केवलवृक्ष—चम्पक, लाछन—कूर्म; यक्ष—वरुण, यक्षी—नरदत्ता (श्वे०) बाहुलीपाणि (दि०), चउंरीधारक—अजित नि० स्थान स० शि० गर्भ श्रावण वदी २ जन्म व तप वैसाख वदी १० केवल ज्ञान वैसाख वदी ९ निर्वाण फागुन वदी १२

२१. तीर्थंकर—नमिनाथ; जन्म स्थान—मिथिला पिता—विजय राज, माता—विप्राराणी; विमान—प्रणत देवलोक, वर्ण—पीताभ, केवलवृक्ष—वकुल, लांछन—नीलोत्पल, (श्वे०) अशोकवृक्ष (दि०) यक्ष—भृकुटि (श्वे० नंदिण (दि०), यक्षी—गांधार (श्वे०) चामुडी (दि०) चउंरीधारक (विजय राज) नि० स्थान स० शि० गर्भ आसौज वदी २ जन्म व तप आषाढ वदी १० केवल ज्ञान मगसिर सुदी ११ निर्वाण वैसाख वदी १४

२२ तीर्थंकर—नेमीनाथ, जन्मस्थान—सौरीपुर वा द्वारका, पिता—समुद्रविजय, माता—शिवादेवी, विमान—अपराजिता, वर्ण—कृष्णाभ, केवल वृक्ष—महावेणु वेतसा, लांछन-शख, यक्ष-गोमेघ (श्वे०) सर्वाह्ण— (दि०) पुष्पयान (दि०) यक्षी-अमा, अम्बिका—कुष्माणिडनी, चउंरीधारक उग्रसेन, नि० स्थान गिरिनार (रैवतक); गर्भ कार्तिक सुदी ६ जन्म व तप श्रावण सुदी ६ केवल ज्ञान आसौज सुदी १ आषाढ सुदी ८

२३ तीर्थंकर—पार्श्वनाथ, जन्मस्थान—वाराणसी; पिता

अश्वसेन राजा, माता-वामादेवी,, विमान प्रणत देवलोक; वर्ण—नीलाभ, केवलवृक्ष—देवदारु या धातकी; लाछन—सर्प; यक्ष—पार्श्व (श्वे०) वा धरजेन्द्र (दि०) यक्षी-पद्मावती, चउँरीधारक—अजितराज; नि० स्थान स० शिखिर गर्भ वैसाख वदी २ जन्म व तप पो० वदी ११ केवल ज्ञान चैत्र वदी ४ श्रावण सुदी ७

२४. तीर्थंकर—महावीर वा वर्धमान; जन्मस्थान—कुड़ग्राम पिता—सिद्धार्थराज या श्रेयांस वा यशस्वी; माता—त्रिशला; विदेहदत्ता वा प्रियकारिणी; विमान—प्रणत देवलोक; वर्ण—पीताभ; केवलवृक्ष—शाल; लॉछन—सिंह; यक्ष—मातग; यक्षी—सिद्धयिका; चउँरीधारक—श्रेणिक या विम्बसार नि० स्थान पावापुर गर्भ अषाढ़ सुदी ६ जन्म व तप चैत्र सुदी १३ केवल ज्ञान मगसिर वदी १० वैसाख सुदी १० निर्वाण कार्तिक वदी १५

२४ यक्ष या शासन देवताओं का विशद वर्णन

(जैनधर्म के अभ्युत्थान के साथ२ भारतियो का लोकविश्वास और साहित्यिक परंपरामें यक्ष लोगों का एक गोष्टीगत भावमें यहा अस्तित्व था। जैन विश्वासके मुताविक इन्द्रदेव चौवीस तीर्थंकरो की सेवा के लिये २४ यक्षों को शासन देवता के स्वरूप नियुक्त करते हैं। प्रत्येक तीर्थंकरके दाहिने पार्श्व मे यक्षमूर्ति की प्रतिष्ठाकी जाती है)

१ यक्ष (शासन देवता)-गोमुख, श्वेताबम्र संकेत-वरदामुद्रा जयमाला और कुठार दिगम्वर संकेत-मस्तकपर धर्मचक्र का प्रतिरूप, वाहन-वृक्ष (श्वे०), गज (दि०), तीर्थंकर—ऋषभदेव या आदिनाथ,

२. यक्ष (शासन देवता)—महाक्ष, श्वेताम्बर संकेत-चतुर्मुख और अष्टवाहु, वरदा, गदा, जयमाला, पाश, निंवु, अभय, अंकुश,

शक्ति, दिगम्बर सकेत-चतुर्मुख और अष्टबाहु, थालिश्रा, त्रिशुल, वाहन पद्म, अंकुश, खड़ग, यष्टि, कुठार वरदा, मुद्रा, गज, तीर्थंकर_अजितनाथ,

३. यक्ष (शासन देवता) त्रिमुख, श्वे० संकेत षडबाहु, नकुल गदा, अभय मुद्रा, निवू, पुष्पहार और जयमाला, दिगम्बर संकेत-त्रिमुख; षड्बाहु, थलिया अकुश; यष्टि; त्रिशुल, और क्षूद्र खड़ग, वाहन-मयूर, तीर्थंकर-संभवनाथ,

४. यक्ष (शासन देवता) यक्षेश्वर (दि०) नायक (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत-निवु, जयमाला, नकुल और अकुश दिगम्बर सकेत-खड, धनुष ढाल और खड़ग, वाहन-गज, तीर्थङ्कर-अभिनदननाथ,

५. यक्ष (शासन देवता) तुम्बरु श्वेताम्बर सकेत-वरदा, वर्च्छा, गदा और पाश, दिगम्बर सकेत-दो सांप, फल और वरदा मुद्रा वाहन-गरुड, तीर्थंकर-सुमतिनाथ

६ यक्ष- (शासन देवता) -कुसुम (श्वे०) पुष्पयक्ष (दि०) श्वेताम्बर सकेत-चतुर्बाहु, फल, अभय मुद्रा, जयमाला और नकुल, दिगम्बर सकेत-चतुर्बाहु, वरदा मुद्रा-ढाल अभय मुद्रा- वर्च्छा, वाहन-कुठजसार, तीर्थकर-पद्मप्रभ,

७ यक्ष (शासन देवता)- मातंग (श्वे०) या वरनदी, श्वेताम्बर सकेत-बिल्बफल, पाश, नेवला, और अकुश, दिगम्बर सकेत-यष्टि, वर्च्छा, स्वस्तिक और वैजयंत, वाहन-गज (श्वे) सिंह (दि०) तीर्थङ्कर-सुपार्श्वनाथ,

८ यक्ष (शासन देवता)-विजय (श्वे०) या श्याम (दि०) श्वेताम्बर सकेत–त्रिनेत्र थालिश्रा और गदा, दिगम्बर सकेत त्रिनेत्र, फल, जयमाला, कुठार और वरमुद्रा, वाहन–हस, तीर्थङ्कर–चन्द्रप्रभ,

९ यक्ष (शासन देवता)–अजित श्वेताम्बर सकेत–निबुफल जयमाला, नेवला, और वर्च्छा, दिगम्बर सकेत–शक्ति, वरदा

मुद्रा, फल और जयमाला, वाहन कूर्म, तीर्थङ्कर-सुविधिनाथ या पुष्पदत

१० यक्ष (शासन देवता) ब्रह्मा, श्वेताम्बर सकेत-चतुर्मुख, त्रिनेत्र, अष्टवाहु निंबुफल, गदा, पार्श्व, अभय, नकुल, ऐश्वर्य सूचक, दण्ड, अंकुश, और जयमाला, दिगम्बर संकेत-चतुर्मुख त्रिनेत्र, अष्टवाहु, धनु, यष्ठि, ढाल, खडग, और वरदा मुद्रा, वाहन-पद्म तीर्थङ्कर-शीतलनाथ

११. यक्ष (शासन देवता) ईश्वर (दि०) वा यक्षेत (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत–त्रिनेत्र, चतुर्वाहु, नेवला, जयमाला, यष्ठि और फल दिगम्बर सकेत–त्रिनेत्र, चतुर्वाहु त्रिसूल, यष्टि, जयमाला और फल, वाहन-वृषभ तीर्थंकर-श्रेयांशनाथ,

१२ यक्ष (शासन देवता) कुमार, श्वेताम्बर सकेत-चतुर्वाहु, निंबु, शर, नकुल और धनु दिगम्बर सकेत-त्रिशिर, षड्हस्त, धनु, नकुल, फल, गदा और वर मुद्रा, वाहन-श्वेतहंस, तीर्थंकर-वासुपूज्य

१३. यक्ष (शासन देवता) सम्मुख (श्वे) या श्वेतम्मु (दि०) श्वेताश्वर सकेत-षडानन, द्वादशवाहु, फल, थालिम्रा शर, खडग, पाश जयमाला, नकुल, चक्र, बंधन फल, अंकुश और अभय मुद्रा, दिगम्बर सकेत-चतुर्मुख, अष्टवाहु, कुठार, चक्र, तलवार, ढाल और यष्टि आदि वाहन मयूर, तीर्थंकर-विमलनाथ

१४ यक्ष (शासन देवता) पाताल, श्वेताम्बर सकत त्रिमुख, षड्वाहु, पद्म, खडग, पाश, नकुल फल, और जयमाला, दिगम्बर सकेत-त्रिमुख, षड्वाहु, अकुश वर्च्छी, धनु, रज्जु, लंगल, फल और त्रिफला विशिष्ट भापका एक चन्द्रातप, वाहन- सुनु तीर्थंकर अनंतजित या अनंतनाथ,

१५ यक्ष (शासन देवता) किन्नर श्वेताम्बर सकेत–त्रिमुख; षड्वाहु, निंबु; ऐश्वर्य सूचक; दण्ड, अभय, नकुल, पद्म और

जयमाला; दिगम्बर सकेत—त्रिमुख; षड़बाहु; थालिश्रा, वज्र अंकुश, जयमाला और वरद मुद्रा, वाहन—कूर्म (श्वे०) मीन (दि०) तीर्थंकर—धर्मनाथ;

१६. यक्ष (शासन देवता)—गरुड (श्वे०) वा, किंपुरुष (दि०) श्वेताम्बर सकेत—निवु, पद्म; नकुल और जयमाला, दिगबर संकेत—सर्प, पाश और धनुष, वाहन; वराह (श्वे०) गज; (दि०) तीर्थंकर—शांतिनाथ;

१७. यक्ष (शासन देवता)—गन्धर्व, श्वेताम्बर सकेत—चतुर्बाहु वरद मुद्रा; पाश; निवु, अंकुश; दिगम्बर सकेत—सर्प, पाश; और धनुष, वाहन-विहगम, (दि०) हस (श्वे०) तीर्थंकर कुथनाथ

१८ यक्ष (शासन देवता)—यक्षेत (श्वे०) वा खेन्द्र (दि०) श्वेताम्बर सकेत—षडानन द्वादशबाहु, निंवु शर; खड्ग, गदा; पाश; अभय मुद्रा, नकुल; नकुल; धनु; फल; वर्च्छी, अकुश और जयमाला दिगम्बर सकेत—षडानन, द्वादशबाहु, वज्र; पाश; गदा; अकुश, वरदा मुद्रा; फल; शर और पुष्पहार; वाहन—कम्बु (दि०) मयूर (श्वे०) तीर्थंकर—अरनाथ

१९ यक्ष (शासन देवता) कुवेर, श्वेताम्बर सकेत—चतुर्मुख; अष्टबाहु, वरदा, कुठार वर्च्छी; अभय, निंबु; शक्ति, गदा और जयमाला, दिगम्बर सकेत—चतुर्मुख; अष्टबाहु, ढाल, धनु, यष्टि, पद्म; खड्ग; थालिश्रा; पाश और वरदा मुद्रा, वाहन गज; तीर्थंकर—मल्लिनाथ;

२०. (शासन देवता)—वरुण; श्वेताम्बर सकेत—त्रिनेत्र; अष्टशिर, जटाकुत केश; अष्टबाहु; निंबू, ऐश्वर्य सूचक; दंड; शर; वर्च्छी; नकुल; धम; धनुष, और कुठार, दिगम्बर सकेत—त्रिनेत्र, अष्टशिर; जटावृत केश, चतुर्बाहु; ढाल; खड्गफल और वरदा मुद्रा; वाहन—वृषभ; तीर्थंकर-मुनिसुव्रत

२१. यक्ष (शासन देवता) भृकुटी (श्वे) या नदिग (दि०),

श्वेताम्बर सकेत—चतुर्मुख, अष्टबाहु; निंबु; बर्च्छी, ऐश्वर्य सूचक,दंड; कुठार; नकुल; वज्र;जयमाला; दिगम्बर सकेत—चतुर्मुख; अष्टबाहु; ढाल; खड्ग, धनुशर; अन्कुश; पद्म; थालिश्रा, और वरदा; वाहन—वृषभ, तीर्थंकर—नामीनाथ;
२२. यक्ष (शासन देवता)-गोमेघ (श्वे) या सर्वाहृण (दि०), या पुष्पजान (दि०) श्वेताम्बर संकेत—त्रिमुख; षड्बाहु; कलम्बु; कुठार; थालिश्रा, नकुल; त्रिशूल; और वर्च्छी; दिगम्बर सकेत—त्रिमुख, षड्बाहु, हातुडी, कुठार, यष्टि, फल वज्र और वरदा मुद्रा, वाहन मुद्रा-नर (श्वे) पुष्परय (दि०) तीर्थकर—नेमीनाथ
२३. यक्ष (शासन देवता) पार्श्वं (श्वे०) या धरजेन्द्र (दि०) श्वेताम्बू सकेत—सर्पाकार, चतुंबाहु, नकुल, सर्प निंबु और सर्प, दिगम्बर सकेत—सर्पाकृति, सर्प, पाश और वरदा, वाहन कर्म, तीर्थंकर—पार्श्वनाथ
२४. यक्ष (शासन देवता) मातन्त्र, श्वेताम्बर संकेत—द्विबाहु नकुल, और निंबु, दिगम्बर सकेत—द्विबाहु वरदा मुद्रा और निंबू, मस्तकोपरि चर्मचक्र सकेत, वाहन—गज, तीर्थंकर—महावीर या पार्श्वनाथ,

२४ यक्ष या शासन देवियों का वर्णन

[यक्षी या यक्ष मूर्ति प्रत्येक तीर्थंकरके बाये पाश्वमें रखी जाती है)
१. यक्षी या यक्ष—ऋषभदेव या आदिनाथ, श्वेताम्बर सकेत-अष्टबाहु, वरदा मुद्रा शर, थालिश्रा, पाश, धनु, वज्र और श्रकुश, दिगम्बर संकेत—द्वादश या चतुंबाहु, आठ थालिया, मिव्रुत्न, वरदा मुद्रा और दा वज्र, वाहन—गरुड, यक्षी या यक्ष—चक्रेश्वरी (श्वे) या अप्रतिचक्र दि०
२. यक्षी या यक्ष—अजितनाथ, श्वेताम्बर संकेत-वरदा मुद्रा पाश, तुरन्जफल, और अंकुश, दिगम्बर सकेत—वरदा, अभय

मुद्रा, शंख और थलिआ, वाहन—बौहाहन (दि०)वृषभ श्वे०
यक्षी या यक्ष, अजित वाला (श्वे०) या रोहिणी [दि०]
३. यक्षी या यक्ष–संभवनाथ, श्वेताम्बर सकैत–चर्तुबाहु, वरदा, जयमाला, फल और अभय मुद्रा, दिगम्बर संकेत-षड बाहु, चन्द्राकृति विशिष्ट कुठार, फल, खडख और वरदा, मुद्रा से सुशोभित, वाहन-मेष(श्वे०) मयुर (दि०) यक्षी—दुरितारि (श्वे०) या प्रज्ञप्ति (दि०)
४. यक्षी–अभिनन्दन नाम, श्वेताम्वर सकेत—चर्तुबाहु, वरदा, पाश, सर्प, और अकुश, दिगम्बर संकेत–चर्तुबाहु, सर्प पाश, जयमाला और फल, वाहन–हंस (दि०) पद्म (श्वे०) यक्षी—कलिका (श्वे०) वज्र शुखला (दि०)
५. यक्षी—सुमतिनाथ श्वेताम्बर संकेत-चर्तुबाहु, वरदा, पार्श्व पर्प, और अकुश दिगम्बर संकेत—चर्तुबाहु,पाश जयमाला और फल, वाहन—हस (दि०) पद्म (श्वे०) यक्षी—महाकाली (श्वे०) पुलवदत्ता (दि०)
६. यक्षी—पद्मप्रभ, श्वेताम्बर सकेत–चर्तुबाहु, शारद, वीणा, धनु, और अभया,मुद्रा,दिगम्बर सकेत—चर्तुबाहु, खडग, बर्च्छी फल, और वरमुद्रा, वाहन—नर (श्वे०) अश्व (दि०) यक्षी—अच्युता (श्वे०) श्यामा (श्वे०) और मनवेगा (दि०)
७. यक्षी—सुपार्श्वनाथ, श्वेताम्वर संकेत—वरदा, जयमाला, बर्च्छी, और अभयमुद्रा, दिगम्वर संकेत—त्रिशूल फल, वरद और घटी, वाहन–गज (श्वे०) वृषभ(दि०) यक्षी(शाता) (श्वे०) काली (दि०)
८ यक्षी—चन्द्रप्रभ, श्वेताम्बर संकेत—खड्ग धनु,गदा, बर्च्छी और कुठार, दिगम्वर सकेत–थालिया, शर, पाश, ढाल, त्रिशूल खड्ग धनु, आदि, वाहन-मार्जा (श्वे०) हंस (श्वे०) महेश दि०) यक्षी—भृकुटी (श्वे०) या ज्वालमालिना

९. यक्षी—सुवुद्धिनाथ या पुष्पदन्त श्वेताम्बर संकेत-चतुर्बाहु, वरदा, जयमाला, कुंभ और अंकुश दिगम्बर संकेत—चतुर्बाहु वज्र,गदा, फल और वरमुद्रा वाहन—वृषभ (श्वे॰) कूर्म (दि) यक्षी—सुतारका (श्वे॰) या माहाकाली (दि॰)

१०. यक्षी शीतलनाथ, श्वेताम्बर सवेत—वरदा, पार्श्व, फल और अंकुश, दिगम्बर सकेत—फल,वरमुद्रा,धनुष आदि वाहन-पद्म(श्वे॰) सुकर(दि॰)यक्षी-अशोका(श्वे॰) या मानवी (दि॰)

११. यक्षी—श्रेयांशनाथ, श्वेताम्बर सकेत—वरदा. गदा, कुज और अकुश, दिगम्बर सकेत—गदा, पद्म कुज और वरदा मुद्रा, वाहन— केशरी (श्वे॰) कृष्णसा(दि॰ यक्षी—श्रवित्सादेवी (श्वे॰) या मानवी (श्वे॰) गौरी (दि॰)

१२. यक्षी—वसुपूज्य, श्वेताम्बर सकेत—चतुर्बाहु, शर, धनु और सर्प, दिगम्बर सकेत—गदा, पद्म युगल और वरदामुद्रा, वाहन—अश्व (श्वे॰) कुंभा (दि॰) यक्षी—चण्ज (श्वे॰) या प्रचडा (श्वे॰) या गाधारी (दि॰)

१३. यक्षी-विमलनाथ, श्वेताम्बर सकेत—चतुर्बाहु, शर, पाश, धनुष और सर्प, दिगम्बर सकेत-दो सर्प और धनु शव, वाहन-पद्म (श्वे॰) सर्प (दि॰) यक्षी—विदिता (श्वे॰) या विजया (श्वे॰) या वैर्णत (दि॰)

१४. कक्षी—अनतजित या अनतनाथ, श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु, खड्ग, पाश; वर्च्छा और अकुश, दिगम्बर सकेत—चतुर्बाहु, धनुष, शर, फल और वरमुद्रा, वाहन—पद्म (श्वे॰) हंस (दि॰) यक्षी—अकुश (श्वे॰) या अनतमति (दि॰)

१५. यक्षी—सम्भवनाथ, श्वेताम्बर संकेत- चतुर्बाहु- पद्म, युगल, अकुश और अभय दिगम्बर संकेत- चतुर्बाहु, पद्म युगल धनु वरद, अकुश और शर, वाहन- अश्व (श्वे) मीन (श्वे] (व्याघ्र (दि॰) यक्षी—कन्दर्प (श्वे॰) या—पन्नगादेवी [श्वे]

या मानसी (दि०)
१६ यक्षी–शांतिनाथ, श्वेताम्बर सकेत-चतुर्वाहु, पुस्तक,पद्म, कमण्डल और पद्मिनी, मुकुल दिगम्बर सकेत–थाली, फल, खड़ग और वरद, वाहन-पद्म (श्वे०), केकी (दि०) यक्षी (निर्वाणी) (श्वे०) या महामानसी (दि०)
१७. यक्षी कुंथुनाथ वाला (श्वे०) या अच्युता (श्वे०) या विजया (दि०) श्वेताम्बर संकेत–चतुर्वाहु तुरंज, फल, बर्च्छा, मुसलि, पद्म, दिगम्बर सकेत— सख, खड़ग, थाली और वरदामुद्रा, वाहन-मयूर (श्वे०) कृष्ण, शूकर (दि०), यक्षी वाला (श्वे०) या अच्युता (श्वे०) या विजया (दि०)
१८. यक्षी—अरनाथ, श्वेताम्बर संकेत-चतुर्वाहु, निंबुफल,पद्म युगल, जयमाला-दिगम्बर सकेत-सर्प, वज्र मृग और वरदामुद्रा, वाहन-पद्म (श्वे०)हंस (दि०)यक्षी-धरणी (श्वे०) या परा (दि०)
१६ यक्षी—मल्लिनाथ, श्वेताम्बर संकेत-वरदा, जपमाला, निंबु और शक्ति, दिगम्बर सकेत—निंबु,खड़ग, शल और वरदा मुद्रा,वाहन-पद्म (श्वे०) केशरी (दि०) यक्षी वैरोता (श्वे०) अपराजिता (दि०)
२०. यक्षी—मुनिसुव्रत, श्वेताम्बर संकेत-चतुर्वाहु, वरदा, जप-माला निंबु, त्रिशूल या कुम्भ दिगम्बर संकेत-ढाल, फल, खड़ग और वरदामुद्रा, वाहन—भद्रासन (श्वे०) कृष्ण सर्प (दि०) यक्षी— नरदत्ता (श्वे०) या बहुरूपिणी (दि०)
२१. यक्षी—नमीनाथ, श्वेताम्बर सकेत–चतुर्वाहु, वरदामुद्रा, खड़ग, निंबुफल, और बर्च्छा, दिगम्बर सकेत–जपमाला, यष्टि, ढाल और खडग, वाहन- हंस (श्वे०) सुम्न (दि०) यक्षी— गाधारी (श्वे०) या चामुंडा (दि०)
२२. यक्षी—नेमिनाथ, श्वेताम्बर संकेत-आम्र वेन्या, पाश, शिशु और अंकुश दिगम्बर सकेत– आम्र? पेन्था और शिशु,

वाहन—केशरी (श्वे०) यक्षी—अम्बिका या कुष्माण्डी (श्वे०) या आम्रा (दि०)

२३. यक्षी या यक्ष-पार्श्वनाथ, श्वेताम्वर (सकेत-पद्म पाश, फल और अकुश, दिगम्वर संकेत (क) चतुर्वाहु होनेसे अकुश, पद्म युगल। (श्वे०) षड्वाहु होनेसे, पाश खड़ग, चक्र, वर्च्छा, वक्रचंद्र गदा और यष्टि (ग) अष्टवाहु होनेसे पाश आदि (घ) चतुर्विश वाहु होनेसे शख, खड़ग, चक्र, वक्रचन्द्र, पद्म नीलनलिनी, धनुष, वर्च्छा, पाश, घटी, कुशाचास, शर, यष्टि, ढाल, कुठार, त्रिशूल, वज्र, पुष्पहार, फल, गदा, पत्र, वृंत, वरदामुद्रा आदि

२४. यक्षी—महावीर या वर्धमान, श्वेताम्वर संकेत-चतुर्वाहु, पुस्तक, निवु फल, अभय मुद्रा और पुस्तक, दिगम्वर सकेत-वरदामुद्रा और पुस्तक, वाहन- केशरी (श्वे०) (दि०) यक्षी सिद्धयिका

नवग्रह या ज्योतिष्क देवों का वर्णन

१. अंचल-पूर्व, ज्योतिष्कदेव-सूर्य, वाहन सप्ताश्व चालित थर श्वेताम्वर सकेत- पद्म युगल दिगम्वर संकेत-

२. अंचल—दक्षिण, पूर्व, जोतिष्क-शुक्र, वाहन, सर्प (श्वे०) श्वेताम्वर सकेत-कुभ दिगम्वर सकेत-त्रिरत्न सूत्र, सर्प, पाश, और जपमाला

३. अचल—दक्षिण, ज्योतिष्क देव-मगल, वाहन-पृथ्वी (श्वे०) श्वेताम्वर संकेत—मुतखनन यत्र वरद, वर्च्छा, त्रिशूल, गदा. दिगम्वर संकेत- केवल वर्च्छा,

४. अंचल—दक्षिण; पश्चिम; ज्योतिष्कदेव-राहु; वाहन—केशरी (श्वे०) श्वेताम्वर सकेत-कुठार दिगम्वर सकेत-वैजयन्ती;

५. अंचल—पश्चिम; ज्योतिष्क देव-शनि; वाहन- कूर्म; श्वेताम्वर संकेत-कुठार; दिगम्वर सकेत-त्रिरत्न सूत्र;

६ अचल—उत्तर; पश्चिम; ज्योतिष्क देव-चन्द्र; वाहन—दश अश्वद्वारा चालित रथ श्वेताम्बर संकेत-अमृत पूर्ण कुभ, दिगम्बर संकेत—अज्ञात;

७: अचल—उत्तर; ज्योतिष्क देव—बुध; वाहन-हस (श्वे०) सिंह (श्वे०); श्वेताम्बर सकेत-पुस्तक; खड्ग; ढाल, गदा, वरद, दिगम्बर सकेत—अज्ञात

८. अचल-उत्तर पूर्व, ज्योतिष्कदेव-वृहस्पति; वाहन-हस (श्वे०) पद्म (दि०) श्वेताम्बर सकेत— पुस्तक, जपमाला; यष्टि, कमडल, वरद, दिगम्बर सकेत - पुस्तक; कमडल, और जपमाला; अचल—शासन के लिये खास अचल नही है, जेतिष्क देव-केतु, वाहन—गोखर सर्प (श्वे०), श्वेताम्बर सकेत—गोखर सर्प; दिगम्बर सकेत— अज्ञात

श्रुतदेवी (सरस्वती) और षोड्श विद्यादेवी का वर्णन

(यह विश्वास किया जाता है कि श्रुतदेवी या सरस्वती समस्तविद्या की अधिष्ठात्री हैं। दूसरे देव देवियो के पहले उनकी पूजा समाज होती है। कार्तिक मास शुक्ल पंचमी तिथी मे जैन लोग उनकी आराधनाके लिये एक विशेष उत्सव आयोजन करते हैं और उनसे यह उत्सव ज्ञान पचमी कही जाती है)

१. देवी—श्रुतदेवी या सरस्वती वाहन-हस (श्वे०) केकी (दि०) श्वेताम्बर सकेत—चतुर्बाहु, पद्म (वरदा या वाद्ययन्त्र सितार) पुस्तक; जपमाला, दिगम्बर सकेत-श्वेताम्बर सकेतका सदृश

१. देवी-रोहिणी, वाहन-गौ (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत-शख, जपमाला, धनुष और शर, दिगम्बर सकेत-कुभ; शख, पद्म और फल

३. देवी-प्रज्ञापनि; वाहन-मयूर (श्वे०) श्वेताम्बर सकेत-पद्म, वर्च्छी, वरद; - निबुफल, दिगम्बर सकेत—खडग और थाली

४. देवी—वज्राकुश; वाहन-गज (श्वे०) विमान (दि०) श्वेताम्बर संकेत—खड्ग; वज्र; ढाल; बर्च्छा; वरद, निंबु फल, अंकुश, दिगम्बर संकेत अंकुश; और वाद्य यन्त्र सितार
५. देवी—अप्रतिचक्र (श्वे०) या जम्बुनदा (दि०) वाहन—गरुड़ (श्वे०), मयूर (दि०), श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहुमें थाली; दिगम्बर संकेत—खड्ग और बर्च्छा;
६ देवी— पुरुषदत्ता—वाहन-महिष (श्वे०); मयूर (दि०) श्वेताम्बर संकेत—खड्ग; ढाल; वरद और निंबुफल, दिगम्बर संकेत—वज्र और पद्म
७. देवी—काली, वाहन—मृग (दि०); पद्म (श्वे०); श्वेताम्बर संकेत- द्विबाहु होनेसे वरद और गदाधारण चतुर्बाहु होनेसे जपमाला, गदा; वज्र और अभयमुद्रा, दिगम्बर संकेत—खड्ग और (यष्टि से हस्त प्रशोभित)
८. देवी—महाकाली; वाहन— नर (श्वे०); शव दि०); श्वेताम्बर संकेत—जपमाला; वज्र घंटी और अभय; दिगम्बर संकेत— पद्म
९, देवी—गौरी; वाहन— कुंभीर (श्वे०)(दि०); श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु; वरद; गदा; जपमाला; स्थल पद्म; दिगम्बर संकेत—पद्म
१०. देवी—गान्धारी; वाहन-पद्म (श्वे०) कूर्म (दि०); श्वेताम्बर संकेत-यष्टि; वज्र, वरद; अभय; मुद्रा, दिगम्बर संकेत—खड्ग और थाली ;
११. देवी—महा ज्वाला या मालिनी; वाहन—मार्जार (श्वे०) शुकर (श्वे०); महिष (दि०); श्वेताम्बर संकेत—बहु अस्त्रधारी; दिगम्बर संकेत—धनु; ढाल; खड्ग और थाली
१२. देवी— मानवी; वाहन-पद्म (श्वे०); शुकर (दि०); श्वेताम्बर संकेत—चतुर्बाहु; वरदा; जयमाला और वृक्षशाखा

दिगम्बर सकेत– त्रिशूल- धारण
१३. देवी– वैराती. वाहन- सर्प (श्वे०), सिंह (दि०); श्वेताम्बर स केत–खडग, सर्प और ढाल दिगम्बर संकेत-सर्प,
१४- देवी—अच्युता, वाहन-अश्व (श्वे०) (दि०), श्वेताम्बर संकेत—धनु, खड्ग, ढाल और शर, दिगम्बर स केत-खड्ग
१५. देवी—मानसी, वाहन-हंस (श्वे०), केशरी (श्वे०), सर्प (दि०), श्वेताम्बर स केत-चतुर्बाहु, वरद वज्र, जयमाला, दिगम्बर स केत— × × ×
१६. देवी—महामानसी, वाहन-सिंह (श्वे०) या हंस (दि०) श्वेताम्बर स केत— वरद, खड्ग, कमडल और वर्च्छा, दिगम्बर स केत—जपमाला, वरदमुद्रा और पुष्पहार

(दिकपाल लोकपाल या वसुदेवताओं का वर्णन)

जैन विश्वास के मुताबिक दिकपाल या वसु देवताऐं दिगों में पहरेदार का काम करते हैं। तीर्थों मे वे हमेशा वशीभूत होते है, दश दिकपालो की मूर्तिकला श्वेताम्बरो से स्वीकृत है। दिगम्बर केवल प्रथम आठ देव प्रहरियों को स्वीकार करते हैं। ब्रह्मा और नाग उनके परिवार युक्त नहीं हे।
१. दिक—पूर्व, दिगपाल-इन्द्र, वाहन- गज (श्वे०) (दि०) श्वेताम्बर स केत— वज्र, दिगम्बर स केत-वज्र
२. दिक— दक्षिण पूर्व, दिकपाल— अग्नि, वाहन- मेष (श्वे०), (दि०), श्वेताम्बर स केत—वर्च्छा, सप्तशिखा, धनु और शर। दिगम्बर स केत-वर्च्छा,सप्तशिखा और यज्ञीयकलसी
३. दिक—दक्षिण, दिक्पाल-यम, वाहन-महीष (श्वे) (गु) श्वेताम्बर स केत—यष्टि, दिगम्बर स केत-यष्टि,
४. दिक-दक्षिण पश्चिम, दिकपाल-नैउत, वाहन प्रेत (श्वे०) भल्लुक(दि०) श्वेताम्बर स केत-परिधान, व्याघ्रचर्म, गदा, खड्ग और पिनाक दिगम्बर स केत-गदा

दिक-पश्चिम,किपाल-वरुण,वाहन शिशुमार(दि०) (श्वे०) मीन (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत-पाश और प्रतिरूपक स्वरूप के-सागर धारण दिगम्बर संकेत-मुक्ता,शैवाल से खोचित और पाश धारण

६. दिक उत्तर-पश्चिम दिकपाल-वायु, वाहन-मृग (श्वे०) (दि०) श्वेताम्बर संकेत-वज्र और वैजयती,दिगम्बर संकेत काष्ठास्त्र

७. दिक-उत्तर, दिकपाल-कुवेर, वाहन- नर (श्वे०) रथ(दि०) श्वेताम्बर संकेत रत्न और मुद्‌गर दिगम्बर संकेत-द्‌विवाहु अथवा चतुर्वाहु पुष्पक विमानमें आरोहण

८. दिक-उत्तर पूर्व-दिकपाल-ईशान,वाहन-वृषभ (श्वे०) (दि०) श्वेताम्बर संकेत-धनु, त्रिशूल, सर्प; दिगम्बर संकेत धनुष, त्रिशूल, सर्प और खपरी,

८. दिक- अधोचल, दिकपाल-ब्रह्मा, वाहन-हंस (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत-चतुर्वाहु, पुस्तक और पद्‌म, दिगम्बर संकेत-अज्ञात

१०. दिक-पाताल, दिकपाल-नाग; वाहन-पद्‌म (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत-हाथमें सर्प धारण दिगम्बर संकेत-अज्ञात

कतिपय विक्षिप्त देवदेवियोका वर्णन

१. देव—हरिनेगमेषीया नैगमेश (सन्नाग जन्मवर प्रदानकारी) वाहन—अज्ञात, श्वेताम्बर संकेत— छागवशिर दिगम्बर संकेत—अज्ञात

२. देव—क्षेत्रपाल [क्षेत्ररक्षाकारी। वाहन—श्वान (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत-जटा; केश; सर्प, पविय, उपवीत, विशवायु अस्त्र से सज्जित षड्‌वाहु होनेमे मुद्‌गर पाश, डम्बरु, धनुष, अंकुश और गैरिकधारण, दिगम्बर संकेत—अज्ञात

३. देव—गणेश- चतुर्नोथ; वाहन मूषिक (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत—हन्तो की सख्या, दोसे चार; ६, ७, १२ और ११२

चक्र खर्वतन होता है; कुठार; वरद, मोदक और अभय, दिगम्बर स केत-अज्ञात

४. श्री या लक्ष्मी (धनदेवी) वाहन-गज (श्वे०) श्वेताम्बर संकेत—नलिनी, दिगम्बर स केत-चतुर्बाहु; पुष्प और पद्म

५. देव— शातिदेव, वाहन-पद्म (श्वे०) श्वेताम्बर स केत— चतुर्बाहु, वरद; जपमाला,कमंडलु और कलश दिगम्बर संकेत-अज्ञात। इस प्रकार जैनकलामें आयोजित देवी देवताओंका विवरण है। अब हम यहाँ पर जैनकला पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करना भी आवश्यक समझते हैं। निस्सन्देह भारतीय सस्कृतिके दीर्घ इतिहासमें जैनकला और संस्कृति एक अविच्छेद्य अङ्ग है। लिखित किताब छोड़कर जितने तरह के स्थापत्य और भास्कर्य केबीच जैन कला व सस्कृति का परिचय मिलता है,उसे विश्लेषण करने से जैनधर्मके बारेमें बहुतसे तथ्य मालूम होजाते है। कलाही एक तरहकी सार्वजनिक भाषा है। जिसके माध्यममें जनसाधारण धर्म के बारे में बहुत बातें जान सकते हैं। इन विविध प्रकारके कला कार्य विविध धर्मावलम्बी बहुतसे अमीरो और राजाओं की अनुकूलतासे रचित होने के कारण और स्पष्ट न होनेसे जैन सस्कृति और दर्शन के बारे में कोई बात बताना आसान नहीं हो सकती।

भारत के जिन स्थानो में जैन धर्मने प्रसार लाभ किया था उनमे से विन्ध्य पहाड के उत्तर भाग या दाक्षिणात्य के कुछ जगह समग्र मध्य प्रदेश और ओड़िसा प्रधान है। आसाम, वर्मा, काश्मीर, नेपाल, भूटान, तिब्बत और कच्छ वगैरह स्थानो में जैन सस्कृति का कोई उल्लेख योग्य स्मारक नही है।

समाज मे धर्म को अमर और जनप्रिय करने के लिए शिल्पियोंने जो उल्लेखनीय सहयोग दिया और कार्य किया है वह सचमुच चिरस्मरणीय रहेगा शिल्पियो ने अपनी सब तरह की

कलासृष्ठि के द्वारा प्रत्येक धर्मकी जो भावपूर्ण अवतारणा की है वह इस युग के ऐतिहासिको के लिए इतिहास लेखन के सारे उपादान देती है। जैन धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के रूपायन के बीच ऐसा एक अटूट ऐक्य और पद्धति का एका है, जिस से एक से दुसरे को जूदा कर देने के लिए सीमा रेखा काटना बिल्कुल आसान नही है। जिस शिल्पीने जैनमूर्ति या चैत्य बनाया है, उसीने कही बौद्ध धर्म की अनेक प्रतिमायें और विहारो का निर्माण किया है, क्योकि दोनों धर्म परस्पर एक साथ प्रचारित और प्रसारित होने से रचित शिल्प कला में कला की पद्धति प्राय. एक ही तरह की देखने को मिलती है।

प्राड्-ऐतिहासिक संस्कृति-पीठों में जैन धर्म के स्मारक देखने को न मिलने पर भी मोहनजोदारो से मिले हुए चिन्ता मग्न नग्न पुरुष-मूर्तियो को जैनतीर्थङ्कर कहा जा सकता है। हड़प्पा से मिले हुए नग्न पुरुष मूर्ति के साथ अङ्ग गठन से विहार प्रदेश के लाहोनिपुर प्रान्त से मिले हुए नग्न जैन मूर्ति का मेल ऐसा अधिक है कि हड़प्पा के प्राचीन मूर्ति को जैन कला कहकर ही ग्रहण किया जा सकता है। उस विषय में इतना अनुमान किया जा सकता है कि बहुत प्राचीनकाल से एतिहासिक युग में भारतीय कला धीरे धीरे प्रवेश कर देश काल और सामयिक सामाजिक वेष्टनी के बीच नए नए रूप में प्रकाशित हुई है। इस रूपायन में अलग अलग धर्म और उसका प्रतीक और प्रतिमा का विभिन्न परिधान, आयुध और वाहन वगैरह से जो सूचना मिलती है वह एक निरवच्छिन्न ऐक्य का निर्देश देती है। जैन और बौद्ध धर्म के पृष्ठ पोषक तत्कालीन धनी और राजाओ के निर्देश से इस कला का प्रकाश न होने से आज हमें कोई एंतिहासिक प्रमाण विभिन्न धर्म के मिल नही सकते हैं।

मौर्य युग में जो सब जैन स्थापत्य और भास्कर्य के रूपायन देखने को मिलते है, उनमे से बिहार के बराबर और नागार्जुन पहाड़ में बनी हुई कई गुफायें (गुहा) उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिको ने प्रमाणित किया है कि इन गुफाओ को तत्कालीन मौर्य राजाओ ने खुदवाया था। उनके समय मे और कई जैन मन्दिर तैयार हुए थे।

सुङ्ग युग मे जैनकीर्ति रहने वाले उल्लेख योग्य स्थानो में ओडिसा की खडगिरि गुफा और उदयगिरि गुफा सर्व प्रधान हैं। चेदिवंशज खारवेल के अनुशासन प्रशस्ति यहां खोदित हुई हैं। खीष्ट पूर्व पहली शती में यह अनुशासन खोदित होने की बात, खोदित लिपि से प्रमाणित हैं। सम्राट खारवेल नन्दराजा द्वारा अपहृत 'जैन' मूर्तिको मगध अधिकार करके फिर ले आए थे। राजा खुद तीर्थकरो के प्रति अनुरक्त रहने से वे और उनकी रानी दोनो ने खुशी के साथ इन सन्यासियो के विश्राम के लिए खंडगिरि की गुफायें खोदित कराई थी। इस गुफा की निर्माण रीति चैत्य निर्माण रीति से अलग है छोटे छोटे चैत्य में रहने वाले विशाल कक्ष (Hall) यहाँ देखने को नही मिलता। हाथी गुफा में खोदे हुए एव मंचपुरी गुफा के नीचे के महल में होने वाले भास्कर्य दुसरी जगह होने वाले स्वल्प स्फीति भास्कर्य से कुछ अनुन्नत होने पर भी उसकी स्वाधीन गति और रचना की ओर से यह वरदूत भास्कर्य से अधिक दृढता (Force) के साथ खोदा हुआ है, यह अच्छी तरह जान पड़ता है।

ई० पू० पहली शताब्दी तक अनत गुफा, रानी गुफा और गणेश गुफाओ को भास्कर्य मे जैन धर्म की सूचना उल्लेख योग्य है। अनन्त गुफा में चार घोड़े लगे हुए गाडी में जो मूर्ति देखने को मिलती है और जिसे सूर्य देव नाम से पुकारते

है, फिर सत्य वृक्ष के चारों ओर रहने वाली वेष्टनी और दूसरी मूर्तियां बुद्ध जन्म और गजलक्ष्मी मालूम होने पर भी यह जैन धर्म की प्रथम थी है। यह बात तो सिद्धान्त किया गया है। वस्तुत भास्कर्य पुंज में रहने वाले 'शिशिमा' देवता के साथ इसका सामंजस्य और ऐक्य मालूम होता है।

जैन 'कल्पसूत्र' के १४ स्वप्नों एवं दिगम्बरों के १६ स्वप्नोंमेंसे यह एक है। तीन फनवालों जो एकदूसरेमें लपेटेहुए सर्पमूर्ति अनन्त गुफा के द्वार के त्रिकोनके ऊपर दिखाई गई हैं। जिन पार्श्वनाथ के साथ कलिंगका नाता बहुतसे ग्रन्थोंमें गिनाया गया है यही कारण है कि उनके प्रतीककी तरह मानो शिल्पिने सर्पमूर्ति अंकन करके इस उपाख्यानको अमरकर दिया है। यह सर्पमूर्ति और नाग नागिन मूर्ति परवर्ती कालमें बनाए हुये बहुतसे मंदिरोंके सम्मुख द्वारपर देखनेको मिलते हैं। मार्शल के मतमें यह गुफा ई० पू० प्रथम शताब्दी में निर्मित हुई थी। गुफा निर्माण स्थापत्य की दृष्टि से (Cave architecture) ये सब देशों में सर्व प्रथम स्थापत्य है। रानी गुफा दूसरी गुफाओंसे अधिक प्रशस्त और उन्नत प्रकार की है। जिस गुफाके खिलान के ऊपर भाग में और दीवारों में खोदे हुये मंडल कलाका प्राचुर्य देखने को मिलता है, सिर्फ इतना ही नहीं इस गुफा के ऊपर भाग में स्वल्प स्मृति भास्कर्य के बीच एक चमत्कार शिकारी दृश्य देखने को मिलता है। कई शिल्प रसिकों ने इस के सौंदर्य पर मुग्ध होकर इस को भित्ति चित्र कहा है। अवश्य ही आजकल इस स्वल्प स्मृति भास्कर्य का ऊपर भाग में कुछ रक्ताभ वर्ण का रंग देखने को मिलता है। यह रंग कैसे वहां दृष्ट होता है, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। उस दृश्यमें पंख वाला एक मृग और कई मृग शावक भी दिखायें गये हैं, उसके पास एक पेड़ है जिस पर पत्तोंके अतिरिक्त

कितने ही फूल हैं। ये फूल सूर्य मुखी फूल की तरह बनायें गये हैं। इन फूलोका विशेष महत्व जो भीहो,परन्तु इसमें शक नही ये सब ही इस देशके ही फूल होगे। अकन रीति से मालूम होता है ये सब इस युग के सूर्य मुखी फूल हैं। पेड़ की एक और एक धनुर्धारी पुरुष शर निक्षेप करने की रीतिसे अकित किया गया है, वह मूर्ति वीरत्व और शौर्य की सूचना दिखा रही है। सारा दृश्य खिलाने के दूसरी और विस्तृत है। शेषाश में एक सियार लोगों का समागम देख कर भयभीत हुआ पीछे सिंहावलोकन करता दिखाया है। चित्र बहुत दिलचस्प है।

उत्कल के भास्कर्य में पशुशालाओ के जो असख्य चित्रण देखने को मिलते है उन मे से मृगी और मृग, हाथी घोड़ो की वास्तव गति और अर्थपूर्ण भंगी बडी मनो मुग्धकर हैं, इस प्रसंगसे विचार करने से यह रूपायन खीष्ट जन्मके पहले अंकित होने पर भी इनका भावपूर्ण भगी बहुत सुन्दर प्रकट की गई है, प्राकृतिक विभव पूर्ण उत्कल भूमि मे घन अरण्य फूल फल शोभित तट देशमें, रमणीय दृश्य नौयात्राके चित्र आदि पत्थर की गोदीमें जिस तरह अकित हुये है, वह कलाकारो का अपूर्व कौशल है और जैनकलाका उसमे अपना विशेष महत्व है।

१०. उपसंहार

"Lord Mahavira, like Rishabha, the First Tirthankara, preached his religion in Kalinga".
—(Harivansa-purana)

जैन शास्त्रीय विवरण एव उड़ियाके इतिहास और संस्कृति के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो गया है कि उड़ीसा के जन जीवन में जैनधर्म का प्रभाव एक अत्यन्त प्राचीनकाल से रहा। जैन 'हरिवंश—पुराण' से ज्ञात होता है कि अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर वर्द्धमान के वहुत पहले से जैनधर्म कलिङ्ग में प्रचलित था। स्वयं प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवने आकर उड़िसामें धर्म का प्रचार किया था। प्रसिद्ध जैन तीर्थ कोटिशिला भी उड़ीसा के अञ्चल में ही कहीं छिपा हुआ है ऐसी जैनों की मान्यता है।

प्राचीन काल में जैन धर्म उडीसा का राष्ट्रधर्म था। कलिङ्ग के राजा भी जैनी थे और प्रजा भी तीर्थङ्करो की उपासना करती थी। मध्यकालतक जैनधर्म का अहिंसाध्वज पूर्णरूपमें कलिङ्ग में फहराता रहा। जैन राजाओ और धनिकों ने उड़ीसा की भव्यभूमि को मनोहारी मंदिरों और अद्भुत गुफाओं से सुसज्जित कर दिया! जैन मूर्तियों की वीतरागता ने कलिङ्ग वासियोंके हृदयों पर एक छत्र अधिकार कर लिया था। यहां तक कि ऋषभ भगवान की मूर्ति सारे देश की गौरव निधि बन गई और 'कलिङ्ग जिन' के नाम से प्रसिद्ध

हुई। नन्दराज उसे मगध ले गये तो कलिङ्ग चक्रवर्ती सम्राट खारवेल उसे वापस उडीसा ले आये। उन्होने और उन की रानी और सन्तति ने जैनधर्म को प्रभावित करनेके अनेक अपूर्व कार्य किये, जिनकी साक्षी खंडगिरि-उदयगिरि के प्राचीन अभिलेख, गुफा मदिर और मूर्तिया दे रहे है। पूर्व पृष्टो में पाठको ने यह सब परिचय पढा है।

साम्प्रत यद्यपि जैनधर्म की स्थिति उड़ीसा में नगण्य है, फिर भी उनकी अहिंसाका प्रभाव जन जीवन में देखने को मिलता है। 'सराक' और 'अलेखी' सम्प्रदाय के लोग निस्संदेह प्राचीन जैन ही है! आज भी उड़ीसा खंडगिरि-उदयगिरि के कारण अखिल भारतीय जैनो के लिये आकर्षण का केन्द्र है। जैनधर्म का कदाचित् एक विद्यापीठ उदयगिरि पर स्थापित किया जावे तो जैनत्व का प्रकाश हो। कटक में आज भी एक मंदिर विद्यमान हैं, जिसकी कला और मूर्तिया दर्शनीय है! उड़ीसा-वासियो को उन पर गर्व है!

निस्संदेह यह धर्म ध्रुव है, शाश्वत है, सत्य है, क्यों कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन भगवान का कहा हुआ है—कुमारी पर्वत से सदा ही उसकी समदर्शी शीतल-शाति भई गिरा-धारा वही और बहती रहेगी! उड़ीसा में जैनधर्म अपनी अनूठी आभा रखता है!

परिशिष्ट सं० १

खण्डगिरि की ब्राह्मीलिपि

खण्डगिर और उदयगिरि की ब्राह्मीलिपि

चिन्ह् वर्द्धमगल[1] चिन्ह् स्वस्तिक[2] नमो अरहतान[3] नमो सव सिधान[4] एरेण[5] महाराजेन महामेघवाहनेन चेत[6] राजवंस वधनेन पसथसुभ-लखनेन चतुरत (रखण)[7] गुणउपेतेन[8] कलिगाधिपतिना सिरि खारवेलेन पदरस वसानि सिरि कडार सरि-खता-किडिताकुमार किड़िका ततो लेख रूप–गणना-ववहार विधि विसारदेन सवविजा वदातेन नववसानि योवराजम् व[9] सामितम् संपुण चतुवीसतिवसे तदानि वधमान सेसयो जनाभि-जयो ततिये कलिगराजवसे[10] पुरिसयुगे महाराजा भिसेचनम्[11] पापुनाति चिन्ह् नन्दिपद[12]

---

१ वध मगल

२. स्वस्तिक

३. और ४. जैन शास्त्रके पाच नमस्कारो में से ये दो अन्यतम है,

5. Dr. B. M. Barua —'ऐरेण'

6. Dr. D. C. Sircar—'चेति',

7. Dr. D. C. Sircar—'लुठण,

8. Dr D. C. Sircar & K.P. Jayaswal—'उपितेन'

9. D C Sircar—'J'

10. Dr. B. M Barua—'राजवशे'

11. K. P. Jayaswal—'माहा'—

१२ 'नन्दिपद'

अभिसित मतोच[13]पघमं[14]वसे वात-विहित-गोपूर,पाकेर-निसेवम पटि सखार यति कलिग नगरी खिवीरे[15]सितल तडाग प्राडियो च वधापयति सवूयान पटि सपन-च कारयति पनति-साहि[16]सत,सहसेहि पकतियो रजयति[17]दुतिय च वसे अचि-तयिता सातकनि[18] पछिमदिसं हय-गज-नर-रथ-बहुल दंड पठापयति कलिग[19]गताय च सेनाय वितासेति असक नगरम्[20] ततिये[21]पुनवसे गघव-वेद-वुधो दप मत-गीत-वादित-सदसनाहि उसव समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरीम्।

तथा[22]चवथे वसे विजाधराधिवास अरकतपुरम्[23]कलिग पुव-राजानाम्[24]धमेन व निति ना व पसासति सवत धमकुटेन[25] भीततसिते च निखित-छत-भिङ्गारे हितरतन-सापतेये[26] सव-रठिक-भोजक पादे वन्दापयति पचमे च दानिवसे नंदराज तिव-

---

13 Prinsep— मते'
14. B. Lal Indraji—'पघम'
15. Dr. B. M. Batua—'गभीरे'
16 Dr. K. P. Jayaswal—'पणती, साहि'
17. Indraji—मूलसे'इजयनि'पढा था'
18 K. P. Jayaswal और Barua—'सतकणिम्'
19 K. P. Jayaswal—'कहुवेनास'और D. C. Sircar—कहूर्भेण'
20 D. C. Sircar—'असिक नगर'
21. Indraji—'ततियेच,
22. Indrji–'इथ' Barua, Jayaswal और Sircar—'तथा'
23. D. C. Sircar—'अहतपूव'
24. D. C. Sircar--'कलिंग पुद-राज'
25. Indraji—'धमकूटस' K. P. Jayaswal—'दितियमकूट'
26. D. C Sircar—'सतेय'

ससत[27]ग्रोघादितम् ततुमूलियवाटाप णाडि नगर पवैसयति सत-सहसेहि च खनापयति ग्रभिसितो च ग्रटेवसे राजसिरि[28]संद-सयतो सद-कर वण ग्रनुगह ग्रनेकानि सतसहूसानि विसजति पोर-जानपद सतमे च [29]वसं[30]ग्रमि-छत-धज-रघ-रखि-तुरंग-सन-घटानि मदति सदंसनं सद-मंगलानि कारयति सतसह सेहि[31]।

ग्रठमे च[32]वसे महता[33]सेनाय मघुर ग्रनुपणे । गोरधगरि घातापयिता राजगहान पपोडापयति[34]एनिन च कम पदान[35] पनादेन-संभीत-सेन-वाहने विपमुचितु मधुर ग्रपयातो यवनराज[36] सवघर[37]वासिन च सदगहतिनं च स पान भोजन च पान भोजन च सदराज भिकान च । सवगह पतिकान च शव ब्रह्मणां न च पान भोजन ददाति । कलिंग जिन[38]पलवभार

---

27. Indraji ग्रौर Jayaswal—'विदनमतम्' Barua ग्रौर Sircar—'तिवमनत'

28. D. C. Sircar—'राजसेयं'

29 D. C. Sircar—'सतम'

30. B. M. Barua—'वसे'

31. D. C. Sircar—इस पंक्ति का ग्रलग पाठ किया है ग्रौर उनका पाठ ग्रधूरा है ।

३२. Prinsep—'च'' पढा ही नहीं है ।

३३. Barua—'महति सेनाय'

३४ Prinsep—राजगहम् उपपीडापयति'
Indraji राजगह नताम् पीतापयति'
Jayaswal—'राजगहम्-उपपीतापयति'
Sircar 'राजगह उपपीतापयति'

३५. Jayaswal—'कमापदान'

३६. B. M. Barua—'येवन उदो'
Jayaswal—'यवन राज'

३७. Jeyaswal दिमित' या 'जिमिति'

३८. Barua—'कलिंग याति' .

कपरुख[39]हय-गज-नर-रथ-सह याति सद घर वासिन च सव राजं मतकानं च सव पहमतिकानं च सव ब्रह्मणान च पान-भोजन[40]ददाति अरहतानम् समणानं च ददाति सत सह सेहि।

नवमेचवसे वेडुरिय कलिंग राज निवास महा विजय-पासादं कारयति अठतिसाय सत सह सेहि दस मेच वसे कलिंग-राज-वसान ततिय युग सगावसाने कलिंग पुवराजान मस-सकार[41]कारापयति सतसह सेहि। एका दसमेच वसे मणि-रतनादि सह पाति[42]कलिंग युवराज निवेसित[43] पिथुडग-दमं नगले नेका सयति[44]अनुपद भवनं च तेरस-वस-सत कतं भिदति चिमिर दह[45]संघात वार समे च[46]वसे सत सह सेहि वितास यति उत्तरा पथरा राजनो मागधान च विपुलं भयं जनेतो हथीस गंगाय[47] पाययति मगधान च राजान वहसति मितं पादे वदापयति नदराजनीतं[48] कलिंगजिनं संनिवेस अग मग-

---

३९. Cunningham—'कपम् उख'
Indraji—'कपरूखो'
Jayaswal—'कल्परुखे' या 'कपरुखे'

४०. D. C. Sircar—'सवगहणं च कारयितु ब्रह्मणानां वय परिहार'

४१. D. C. Sircar—'दंड-सधी सामसयो भरधवस पठानं मह जयनं' १० वें साल की वणना उन्होंने नहीं पढी है

४२. Prinsep—'उपहि, Indraji—'उपलभाता'
Jayaswal—'उपलभत Sircar—'उपलभते'

४३. D. C. Sircar—'पुव राज निदेसितं'

४४. D. C. Sircar—'पीथ'ड गदभन गलेन कासयति'

४५. D.C. Sircar – 'जनपदं भाजानं च तेरे सवस सत कतं [भिदल अमिर दह'

४६. Indraji—'वारसम

४७. Prisep—'हयस गगस' Jayaswal=हथी सुंगगीयम्'

४८. Barua—'नंदराजनीत कलिंग जिनासनम्'

घतो कलिंग आनेति हयगज-सेन वाहन-सह सेहि अग—मगध वासिनं[४९] च पादे वदापयति। वोथि—चतर-पलिखानि गोपुरानि[५०] सिहरानि निवेसयति। सुतवासुको[५१] रतन पेसयति[५२]-प्रभुत मछरियं च हथी निवास[५३] परिहरंति[५४] मिग-हय-हथी-उपानामयंति[५५] पड राजा विवधाभरणानिसुता-मणि गतनानि आहरापयति इध सत-सहासानि सिनो वसो कारेति तेरसमे च वसे सुभावत विजयने कुमारो पवते अरहणे परिनिवसतो हि कायनिसी दियाय राजभतकेहि राजभातिहि राजनीतिहि राज पुतेहि राजमहिषि खारवेल सिरिना सत वस लेण सहकारापितम्[५६]

सकति समता[५७] सुविहितानं च सवदिसान[५८] अननं तापस-इसिन सपियनं[५९] अरहत निशी दिया[६०] समीपे पभारे वराकर-समुथापिताहि अनेक योजनाहि ताहि पनति साहि सत सह सेहि-सिनाहि सिनयंभानि च चेतिया निच कारापयति पटलिक चतरे

४९. Sircar—'अंग मगध वनु'
५०. K. P. Jayaswal—'त' जठर लिखिलवरानि'
D. C. Sircar—'कतुजठर लिखिल'
५१. D. C. Sircar—'सतवसिकन'
५२. D. C. Sircar—'परिहारोहि'
५३. Barua—'हथीस पसदम्'
५४. D. C. Sircar—'परिहर'
५५. D. C. Sircar—'रतनमाणिक'
५६. D. C. Sircar—ने इसका अलग पाठ किया है-'तेरसमे च वसे सुपवंत विजय चके अरहतेहि पखिन ससितेहि कायनिसि दियायपापु जाव केहि राजभितिक चिनवतानि वासीसितानि पुजानु रत-उवासग-खारवेल सिरिना जावदेह सयिना परिखाता।
५७. Jayaswal—'सुकति'
५८. Barua—'सतदिसान'

च वेडरिय-गभे थभे पटि ठापयति पनतरिय सतसहे सेहि मुरिय कल वोच्छिन[61] चेचयति अध सतिक तिरिय[62] उपादयति खेम-राजस वढराजस[63] इदराजस[64] धमराज पसंतो सनतो अनुभवंतो कलाणानि गुण विशेष कुशलो संवपासंडपुजको सव देवायतन सकार कारको अपतिहत चको वाहन बलो चकधरो गुतचको पवतचको राजसिवसु-कुलविनिसितो[65] महाविजयो राजा खारवेल सिरि (चिन्ह वृक्ष चैत्य[66])

खडगिरि और उदयगिरि के दूसरे शिलालेख

(१) वैकुण्ठपुरी गुफा—

अरहतम् पसादायम्[67] कालिंगानम्[68] समनानाम् लेणम् कारितम् राजिनो ललाकस हथिसहस पप्नोतस[69] धुतुना कलिग चकवति नो सिरि खारवेलस अगमहिमहिसुना कारितम्।

२ मचपुरी गुफा—

एरस[70] महाराजस कलिंगाधिपतिनो महामेघवाहनस

---

५९. Baru—'यतिनं तापसइसिन लेणं कारयति'
६०. Indraji—'निंसिदिय'
६१. D C. Sircar—'मुखिय कल'
६२. D. C. Sircar—'अंगसक तुरिय'
६३. Barua—'वधराजस'
६४. Sircar—'भिखुराजस'
६५. Barua—'राजिसि-वश-कुल-विनिसितो'
६६. वृक्षचैत्य'
६७. Barua—'पसादानम्'
Sircar—'पसादाय'
६८. Caunningham—'विनिगानम्'
६९. Barua—'हथिसाहस पनाथस'
७०. R. D. Banerjee—'ऐरस'
D. C. Sircar—'एरम'

कदंप सिरिनो[७१] लेणम्

(३) कुमार वटुकस लेणम्[७२]

(४) छोटा हाथीगुफा—

अगि—ख......पलेणम्[७३]

आगि......ख......पलेणम्[७३]

(५) सर्प गुफा—

चुलकमस कोठाजेय च

(६) कि मस हलखिताय च पसादो

(७) हरिदास गुफा—

चुडकमस पसादो कोठाजेया च

(८) व्याघ्र गुफा—

नगर अखदंश[७४]

सभूतिनो लेणम्[७५]

(९) जम्वेश्वर गुफा—

महामदास वारियाय नाकिनास लेणम्

(१०) तत्त्व गुफा-(२)-

पादमुकुलिस कुसुयास लेणम् फि[७६]

(११) अनन्त गुफा—

...दोहद समाणानम् लेणम्[७७]

(१२)......कोठाजेया......

---

७१. Sircar—'वकदेप सिरिनो R. D. Banerjee—कुलेपसिरि'

७२. Rajendra L. Mitra—'लेणम्'

७३. R. D. Banerjee—'के इस पाठ को B. M. Barua ने सम्पूर्ण काल्पनिक बताया है।

७४. B. M. Barua—'नगर अखदंसन् भूतिनोलेयम्

७५. Prinsep और R. L. Mitra ने गलती से 'लोग्रम्' पढ़ा था।

७६. B. M. Barua—'पानमुनिम्क कु.सुमव लेणनि'

७७ B. M. Barua—'समाणानम् लेणम्

(१३) तत्त्वगुफा—(१)-

शीपुतसकया......

'खण्डगिरि और उदयगिरि के ये शिलालेख पुराने ब्राह्मी-लिपि में लिखे हैं। ये लेख ईसा के जन्म से पहले पहली सदी के अन्त में या बाद ही लिखे गये थे, क्योंकि ऐतिहासिकोने खारवेलके हाथीगुफा वाले शिलालेख की नायनिका के नानाघाट वाले शिलालेख के साथ तुलना करके बताया है कि हाथीगुफा का शिलालेख नानाघाट के शिलालेख के बाद का है। डा० दिनेशचन्द्र सरकार के मतमें नानाघाट का शिलालेख ईसवी पहली सदी के मध्यभाग का है। अतः हमें इस पर विश्वास रखना चाहिये कि हाथीगुफा तथा खण्डगिरि और उदयगिरि के शिलालेख ईसा के पहले पहली सदी के अन्त के या ईस्वी पहली सदी के हैं।

शिलालेखो की भाषा पालीभाषा से बहुत मिलती-जुलती है। असल में कुछ खास शब्दो को छोडकर शेष शब्द पाली के हैं। आमतौर पर इन शिलालेखो की भाषा पर अर्द्धमागधी का प्रभाव अप्रतिहतन रूपसे है। अशोकके गिरनार के शिलालेखो के पाठसे स्पष्ट जान पड़ता है कि वह पाली और किसी पश्चिम भारतीय भाषा का मिश्रण है। उसी तरह पाली के साथ हाथीगुफा के शिलालेख की समता का विचार करके इसे कलिंग की व्यहृत प्राकृत भाषा कहना अनुचित नही होगा। यहा एक सवाल आ सकता है कि पाली मुख्यतया बौद्धो की भाषा है। खण्डगिरि तथा उदयगिरि के जैन शिलालेखो पर इसका असर हुआ कैसे ? इसके उत्तर में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही है। तो भी यह स्वाभाविक और सम्भव है कि पश्चिम भारतीय किसी जैन उपासक से या बौद्धधर्म का त्याग करके जैन धर्म को अपनाये हुए किसी संन्यासी द्वारा खण्डगिरि

तथा उदयगिरि के शिलालेखो की रचना की गयी हो जिससे पाली भाषाके साथ इन लेखोकी भाषाकी इतनी समता है। अथवा गुफाओ में पाली भाषा रचित प्रशस्तियां लिखने का भार किसी जैन सन्यासी पर था और वह अर्द्धमागधीके प्रभावसे प्रभावित था

उस जमाने में कलिंग की बोलचाल की भाषा का स्वरूप बना सम्भव नही है।

यद्यपि हाथीगुफा के तथा दूसरे शिलालेख गद्यमय है, फिर भी उन लेखो का ढग सावलील है और उन में काव्यिक उपादान भरपूर है। चक्रवर्ती खारवेल और उनकी महारानी के शिलालेखोका बहुत सा भाग काव्यरीति लिखे है। इस काव्य रीति की योजना के कारण खण्डगिरि तथा उदयगिरि के शिलालेख इतने आकर्षक बन गये है।

परिशिष्ट सं० २

ओड़िसा में जैनों का निदर्शन *

वालेश्वर जिल्ले में जुलाहो की सख्या ५६०००, आगे ये बहुत अच्छा कपड़ा बुनते थे; लेकिन विलायत से कपड़े आजाने के कारण इनका व्योपार नष्ट हो गया और बुनाई का काम छोड़कर ये लोग किसान मजदूरो का काम करने लगे, इनमें से जिनको अखिनी और खोरिआ मती कहा जाता है, वे पहले बंगाल से वालेश्वर को पतले धागे की बुनाई सीखने आये थे। मानभूम गजेटियर से मालूम होता है कि सराक लोगो के भीतर अखिनी जातिके जुलाहे भी है। उससे मालूम होता है कि वालेश्वर की अखिनी जातिके जुलाहे पुराने जमाने में श्रावक थे और इनका धर्म जैन था। वालेश्वर जिलेमें अघोरी

* प्राचीन जैन स्मारक (बग, बिहार, ओड़िसा) लेखक-धर्म दिवाकर सीतल प्रसाद जैन ग्रन्थ से उद्धृत। जैन पुस्तकालय, सूरत।

जाति के कई लोग है, वे उग्र क्षत्रिय कहलाते है। वे व्योपार वाणिज्य करते थे। अनुमित होता है कि शायद वे एकसमय अग्रवाल थे।

सुवर्ण रेखा नदी के ऊपर बालिआपाल से सात मील पूर्व करतसाल गाव है। वहाँ करट राजाके प्राचीन किले मौजूद है।

सिंहभूम जिला

वंगाल गेजेटियर ई० १९१० vol. INo 20 सिंहभूम-छोटा-नागपुरके दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। क्षेत्रफल-३८९१ वर्गमील लोक सख्या—६१३५७९, पूर्व में मेदिनीपूर, दक्षिणमें मयूर भंज, पश्चिममें गागपुर और राँचि तथा उत्तरमे राँची और मानभूम, वामनघाटी प्रान्त (बारहवी सदी) ताम्रलेख से मालूम होता है कि मयूरभज के भज-वशीय राजाओ ने श्रावकों को बहुत ग्राम दिये थे उक्त वश के संस्थापक वीरभद्र एककरोड साधुओ के गुरू थे। (वंगाल जर्नल-ए०, एस०, ई० १८७१, पृ० १६१-६२) ये जैन थे। वहा के तांबा की खाणि में इस स्थानके श्रावक काम करते थे।

वहा के पहाड, घाटी, घन जगल और नजदिक गांव में बहुत-सी प्राचीन कीर्तिया अब भी मौजूद है। यह अंचल श्रावकों के अधीन में था।

मेजर टिकलने लिखा हैं (१८४०) सिंहभूम श्रावको के हाथ में था। लेकिन अब नही है। तब उन की सख्या औरो से कही अधिक थी। उनके देशका नाम था शिखर भूमि और पाचेत। उनको बडी तकलीफ देकर निकाल दिया गया है (जर्नल ए० एस० वंगाल, १८४०, स०—६८६).

कर्नेल डालटनने वंगाल एथनोलोजीमें लिखा है, सिंहभूमके कई हिस्सा एक ऐसे दल के हाथमें थे कि जो मानभूम में अपने प्राचीन स्मारक छोड़गये है। वस्तुतः वहाँ बहुत पुराने लोग रहा

करते थे। उनको श्रावक या जैन कहा जाता था। अब भी कोलहनको 'हो' जाति के लोग कई तालावो को 'सरावक' (श्रावक) सरोवर कहते है।

श्रावक या गृहस्थ जैन लोगो ने जगल के भीतर तांबे की खानें ढूंढ निकाल कर उनमें अपनी सारी शक्ति तथा समय को विता दिया है। (A. S. B. 1869. P. 179–5) मानभूम का जैन मन्दिर १४ वी या १५ वीं सदी का परवर्ती नहीं है। अतः उस समय के पहले वहां जैन धर्म का प्रवेश करना सभव है।

वेनु सागर में कई प्राचीन (सातवी सदी के) जैन मदिर है। एक बौद्धमूर्ति और एक जैनमूर्ति भी है। यह वेतुसागर के राजा कृष्ण के पुत्र 'वेनु' के द्वारा खोदित है। कोलहन–यहां के प्राचीन अधिवासियों ने वहुत तालव खुदवाए थे।

रुग्राम—धाल भूमि के महुलिया ग्राम से दक्षिण पश्चिम के दो मील दूर पर कई स्थानो में श्रावको की वसति रहने का प्रमाण मिलता है।

'शिक्षा' (वाकीपुर ता० ८–५–१९२२) पत्रिका से मालूम होता है कि 'हो' और भूयां जाति के अलावा दूसरे जाति के लोगोंका यहां (सिंह भूमि) आना ३०० साल से अधिक नहीं है। सौ साल के पहले सिंह भूमि के वहुत से स्थानों में खासकर पोड़ाहाट में वहुत जैन लोग थे।

उन्हें वहाँ के आदिम निवासिलोग 'सोराख' (सराओगी) कहते है। उस समय का प्राचीन मन्दिर, मूर्ति, गुहा, पुष्करिणी आदि का अवशेष देखकर मालूम होता है कि वे ऐश्वर्यशाली और स्वाधीन थे। वहां मिट्टी के भीतर से रुपए, मुहरें, चित्रित टूटा हुआ काच, चुड़ियां और मूल्यवान पत्थर की मालायें मिलती हैं।

हांसी, बुण्डु, मोत, हुरुण्डी, हेवलसाहि, नुआडिह, मोड, नौडहृ आदि ग्राम और विभिन्न स्थानो मे प्राचीन जैनमूर्ति मन्दिर और सरोवर देखने को मिलते है । मूर्तियो में बहुत सी पार्श्वनाथ की है । हुरुण्डि में ऋषभ देव की एक मूर्ति भी है अब उसी मूर्ति को वासुदेव की मूर्ति मानकर लोग उसकी पूजा करते थे । तैल और सिन्दूर से रगते थे । नआडिह के श्रावक लोग जनेऊ लेते हैं और पार्श्वनाथ की पूजा भी करते है । ये महापात्र, पात्र, दृत्त, सान्तरा, वर्धन, महात्र, अहिबुधि, सामग्री, देवता, प्रमाणिक, आचार्य, वेहेरा, दास, साधु पुण्टि, महात, मोहता, मण्डल, वैशाख, राउत, नायक, निशंक, मोधुरी मुंदी, सेनापति, उच्च, नाहक आदि भिन्न भिन्न सज्ञाधारी है। इनके गोत्र चार प्रकार के होते है—अनन्त देव, क्षेमदेव, कश्यप और कृष्ण देव।

सराक और रङ्गणी जुलाहे के आपस में विवाह का सम्बन्ध नही हो सकता, ये खुद खेती का काम नही करते। उनके पुरोहित भी नही है । रङ्गणी जुलाहे लोग ब्राह्मणो के हाथसे पानी नहीं पीते है । सराक लोग डिम्बिरी आदि फल में कीडा रहने के कारण उने नही खाते है और प्याज गोभी और आलू भी नही खाते है । ये खण्डगिरि को आते है। विवाह काड और शुद्धि क्रिया नामक दो ग्रन्थ उनके पास है । उस से ये पुरोहित की सहायता के विना वैवाहिक सस्कार कर लेते है।

कटकजिला

आसिया पहाड—छतिया पहाड, चांदोल, जाजपुर, रत्नगिरि, उदयगिरि (जाजपुर) आदि स्थानो में जैनमूर्तियां है। ओसिया पहाड़ को चतुरावोट भी कहते है । जाजपुर के अखडेश्वर मन्दिर में अन्य मूर्तियो के भीतर एक छोटी सी जैनमूर्ति

उपस्थित है। कटक जिले के तिगिरिया, बडम्बा, बांकी और पुरी जिले के पिपिल थाना में सराक जुलाहे रहते है।

कोरापुर जिलामें जैनमूर्ति* -

भैरव सिहपुर-जयपुर पलुवार का एक गाव- पहाड के नीचे-२०००फुट ऊँचाई पर।लोक सख्या ११४१(-१९४१सदीमें)

एक समय यह गांव जैनधर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। यहां बहुत अंद तीर्थंकरो की मूर्तिया है। कई एक फुट, कई पांच फुट और कोई -मूर्ति एक फुट से छोटी -होगी, यहा ऋषभ नाथ की एक असीम मूर्ति है Stealite पथर की। अभी गाव के लोग इससे कुल्लाडी आदि में धार देते है यहा एक शिव मदिर है। उसी-शिव मन्दिर की भीतके भीतर बहुत-सी जैन मूर्तिया रह गयी है। अब यहा ब्राह्मणो की वसति है।

नदपुर में कई जैनमूर्तिया दिखायी जाती है। परन्तु उस समय किन किन जातियो के लोग-जैन थे, उसका प्रमाण नही मिलता। [पृष्ट२२ कोरापुर जिला गेजेटिअर १२४५]।

परिशिष्ट ३

उड़ीसा के जैनी और खन्डगिरि-उदयगिरि की गुफायें

"उडीसा में अब जैन नगण्य हैं। कटक के चौधुरी के वश घरो का कहना है कि मजिनाथ दिगम्वर जैन थे। वे नागपुर से आए थे। यहा जैनो के विवाह और शुद्धि क्रिया किसी पुरोहित द्वारा सम्पन्न नही होती जैन अपने में से किसी एक वृद्ध पण्डित से इस कार्य को सम्पन्न कराते है। हिन्दू या ब्राह्मणो में जिस तरह 'कर्णमन्त्र' पाते हैं उसी तरह यहां के जैन लोग नही करते। इस जातिके लोग निर्ग्रन्थ गुरूसे दीक्षा ग्रहण करते है। यहाके जैन 'नवतिलक' लगाते है। मरे हुए आदमीका ग्यारह

---

*कोरापुर जिल्ला वालटिअर-१९५५-पृष्ठा-१५९

दिन में ये शुद्ध होते और तेरह दिन बाद श्राद्ध करते हैं। प्रथम श्राद्ध के बाद फिर मृत व्यक्तिका वार्षिक श्राद्ध नही करते है।

उडोसा के जैन अन्य जैनो की तरह केवल निरामिश खाद्य खाते है। मद्य मास मधु हर किस्म के मूल तरह २ के उदम्बर और २२ प्रकार के दुसरे अभक्ष्य खाद्य नही खाते।

माघ सप्तमी के दिन खडगिरि जैन मन्दिर के तीर्थंकरो को 'खड खीर' भोग लगता है। दूध अरूआ चावल और खांड आदि मिलाकर 'खंडखीर' तैयार होता है। कहते है जो आदमी माघ सप्तमी के दिन कोणार्क के चन्द्रभाजा में स्नान कर, पुरी जगन्नाथ दर्शन के बाद खडगिरी जाकर 'खडखीर' भोग खाएगा, वह स्वदेह स्वर्ग यात्रा करेगा।

खडगिरि और उदयगिरि के पहाड़ में निम्नलिखित गुफा समूह है :

खंडगिरि :—	उदयगिरि
१. तोता गुफा (१)	१. राणी हंसपुर
२. तोता गुफा (२)	२-३. बाजादार गुफा
३. खोला गुफा	४. छोटा हाथी गुफा
४. जेंतुलि गुफा	५. अलकापुरी
५. खडगिरि	६. जय विजय
६. ध्यानवर	७. ठाकुरानी
७. नवमुनि	८. पणस
८. बार भुजा	९. पातालपुरी
९. त्रिशूल	१०. मंचपुरी
१०. अभग्न गुफा	११. गणेश गुफा
११. ललाटेंदु गुफा	१२. दानघर
१२. आकाश गगा	१३. हाथी गुफा
१३. अनत गुफा	१४. सर्प "

१४. जैन मंदिर　　　　　　१५. बाघ ,,
१५. देव सभा　　　　　　　१६. गणेश्वर ,,
　　　　　　　　　　　　१७. हरिदास ,,
　　　　　　　　　　　　१८. जगन्नाथ ,,
　　　　　　　　　　　　१९. राई ,,

जयपुर के नदपुर और जैनगर नामके स्थानो में बहुत से जैन गुफा दिखते हैं, और जयपुर के करीब अधिकांश देव मंदिर में इस धर्म की मूर्तियां दूसरे धर्म के देवता की तरह पूजा को पाते है।

The Jaina remains are visible in Jeypore and Nandapur and confirm the idea that once it was a place of Jaina influence. The heaps of Jaina images and the vast remains of Jaina temples clearly indicate that in the days past Nandapur was a centre of Jaina religion.

—B.Singh Deo's Jeypore in Vizrgapatam p 3.

It is worthy of note that even in Hiuen tsang's time Kalinga was one of the chief seats of the Jains. —Beal's Si-yu ki Vol I p 205.

The characteristic feature of Jainism is its claim to universality. × ×. It also declares its object to be to lead all men to salvation and to open its arms—not only to the noble Aryan, but also to the low-born Sudra and even to the alien, deeply despised in India as the Mlechha.

Buhler p. 3

ओड़िसा में जैन धर्म और तत्वविचार प्रसङ्ग में जैन 'हरिवंश' से स्पष्ट होता है कि दक्ष के पुत्र आलेय और बेटी मनोहारी थे। मनोहारी की खूबसूरती उसके रूप और

यौवन को देखकर स्वयं दक्ष इतना चचल हो उठा कि वे अपने को सम्हाल न सके। इससे रानी इला खीझ कर पुत्र आलेयको लिये दूसरी जगह चली गई। वहां आलय ने इला-वर्धन नाम से एक नगर बसाया। इस इलावर्धन का दूसरा नाम दुर्गादेश था। यह दुर्गादेस ताम्रलिप्त तक व्याप्त था।

इला पुत्र आलेय ने फिर नर्मदा के किनारे माहिष्मती नगर बसाया। और बाद को आलेय जैन सन्यासी हो गए। आलेय के बाद कुनीन राजा हुए। उसने विदर्भ में कुंडिनपुर बसाया था। इस कुंडिन पुर को नल राजा गए थे। वहां उसने अपना वस्त्र खोया था याने नल वहां दिगम्बर जैन हो गए। नल दमयन्ती उपाख्यान में विशेषतः यह ध्यान देने की बात है। और जैन धर्म किस तरह नर्मदा किनारे से ताम्रलिप्त तक व्याप्त था, यह भी ध्यान देने की बात है।

हमारे जगन्नाथ मन्दिर के रंधन रिवाज को नल रंधन कहते हैं। इससे मालूम होता है कि जगन्नाथ मन्दिर में नल का प्रभाव पड़ा था, जब नल दिगम्बर जैन हो गए और जगन्नाथ मन्दिर से नाता स्थापित हुआ, तब सम्भव है उसी के कारण जगन्नाथ मन्दिर की रंधन प्रणाली को 'नल रंधन' कहा गया, काव्य में विचित्रता दिखाने के लिए अवश्य नल दमयन्तीका मिलन फिर किया गया है जो हो इस कहानी से इतना तो मिलता है कि नलने जैनधर्म ग्रहण किया था।

बैल जहां भ० ऋषभ का वाहन है, वहां वह महादेव का भी वाहन है। हमारे 'वासुआ बलद' से मालूम होता है कि बासुदेव वैल का उपभ्रंश होगा। फिर इससे यह मालूम होता है कि ऋषभ देव से आरम्भ करके जैन धर्म और महादेव धर्म या शैव धर्म है, फिर बाद का वशिष्ट नन्दिनी को लेकर विश्वामित्र और शिवमें घोर विवाद को लें तो भासता है

कि हिन्दू धर्म और उसके बीच क्षत्रिय ब्राह्मण के बाद इसतरह चल रहा था, लेकिन इन सबकी जड़में एक स्वतन्त्र चिन्ता धारा के लिए कई और धीरेधीरे एक चिन्तासे दूसरी चिन्ता किसतरह परिवर्तन होती आई है, इसका इतिहास मिलता है।

इस गाय या बैल या साड को लेकर जैन धर्मसे शैव धर्म शैव धर्म से वैष्णव धर्म की उत्पत्ति अच्छी तरह मालुम होती है। सांड सिर्फ उपलक्ष मात्र है। धर्म भी एक चतुष्पद गाय के रूप में कल्पना किया गया है। यह जैन धर्म मे है फिर हिन्दू धर्म में भी है। सत्य एवं द्वापुर और कलि में धर्म कैसे चतुष्पादमें धीरेधीरे एक पाद फिर घोर अन्धकारको आता है, और जाता है उसका तथ्य निहिति कियागया है। अत. जैनधर्म ही आद्य धर्म, ऋषभ इसके आदिदेवता, वृषभइनका वाहन अर्थात् पहले मानव का प्रथम शखा, सहायक होता है यह बैल-वृषभ।

धर्म कलिगसे सिहलको गया है—ऋषभदेव, सिहलमहावशमें लिखा है ऋषभदेवने फिर मगध जाकर उत्कलके इस आदिधर्म का प्रचार वहां किया था। स्थविर-वलि जैनग्रन्थमें उल्लेख है कि एक बुड्ढा हाथी नदीस्रोतमें डूबगया। उसका शव समुद्रमें बह गया एक कौआशवके पीछे योनिके अन्दर घुसकर रहगया जब जलचरोने उस शवको खा लिया तो कौआ निकलकर उड़गया।

इस कहानीका रहस्य भेद करना कठिन है। तबभी इतना जान पड़ता है कि उत्कलका आड्डियानतन्त्र देशविदेशमे प्रचारित हुआथा, जिसतरह नदीमें नाव बह कर बादको विशाल समुद्र में जाती है। वर्णन है कि भ० महावीर कलिग राजाके सुहृद्थे। जैन दिन-यानमेवर्णित है कि भरतराम के विदाय देकर नन्दाग्राम में रहने लगे, इस नन्दीका अर्थ होताहै सांड। यह मानो सांड पूजने वाले वशमें अन्तर्भुक्त हो गए अर्थात जैनधर्म ग्रहण करलिया।

चन्द्रगुप्त 'चन्डनामके' सांडसे सुरक्षित हुए थे अर्थात् चन्द्र

गुप्तने जैन धर्म ग्रहण किया था। इसका अर्थ यही होता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थो में 'पाँच वृक्ष प्रसिद्ध है यथा-अशोक वट, विल्व, अश्वत्थ और धात्री। इन पाच वृक्षो को तरह तरह के आदमी पूजा करते थे। भुवनेश्वरके गर्गवट्ट या गरावड्ड ब्राह्मण वटवृक्षके उपासक थे। उसीतरह महादेव पूजक ब्राह्मणो को विल्व वृक्ष पूज्य था। हमारे यहा यह मामूली बात है, कि वट और अश्वत्थका विवाह हो गया था। इसका अभिप्राय यह होता है किदो धर्म सम्प्रदाय काल क्रमसे मिल गए थे। अश्वत्थ ही जैनधर्मका प्रतीक और वही हिन्दू धर्मका। लेकिन फिर कल्प वृक्ष भी जैनधर्मका चिन्ह है। खारवेल विल्वके उपासक निकलते है। खारवेल शब्द में ही विल्व शब्द का उल्लेख है।

पूर्ण कुम्भ नारी के स्रोत वक्ष का चिह्न है। उस पूर्ण कुम्भ को देखना शुभ होता है। ऐसे सोचकर हम मगल घड़ी में घर में पूर्ण कुम्भ या पानी के कलश जल भरकर रखते है। पूर्ण कुम्भ फिर जैन धर्म के भ० मल्लीनाथ का चिह्न होता है। श्वेताम्बर जैन कहते है कि ये पहले नारी थे। और बाद को नर रूप को धारण किया था। हिन्दू शास्त्र के अर्द्ध नारीश्वर की तरह यह बात है। इन मल्लीनाथ का सादृश्य फिर हमारी सुभद्रा से है। उनका चिह्न होता है कलश, मारीच की पत्नी कलश पूजा करती थी अर्थात् वे जैन थे।

जैन 'स्थविरावली' मे लिखा है, जैसे जलते हुए अङ्गार कुचैले पानीके लगनेसे धीरे धीरे बुझ जाता है, उसी तरह उम्र बढनेके साथसाथ मानवकी काम वासना प्रज्वलित हो कर धीरे धीरे बुझने लगती हैं। किन्तु कोयलेमें आग लगनेसे जिस तरह कोयला अग्निमय होता है, उसी तरह युवती नारीके नूतनस्पर्श से नर रूपी जीर्ण तरु भी फिर वसन्तायित हो उठना है।

भ० आदिनाथ ऋषभ के वाहन वृषभ है। यह चिन्ह हमें

शिक्षा देता है कि वृषभ जिस तरह व्यर्थ ही अपनी शक्ति अपव्यय नही करता, गाय का ऋतु समय होने पर ही वह उसके पास जाता है, आदमी को भी वैसे ही उपयुक्त समय में ही नारी के साथ युक्त होना उचित है। सब समय नहीं। नही तो आदमी, शीघ्र ही जीर्ण और शक्ति हीन हो जायगा।

जैन धर्म मे भ० पार्श्वनाथ का चिन्ह सर्प फण है। यह पार्श्वनाथ पर्शुराम के सदृश भासते है। पार्श्वेश्व और पर्शुराम दोनो एक प्रतीत होते हैं।

भ० महावीर का चिन्ह सिंह है, वैसे जो राजाओं की केशरी उपाधि हुई वह इस चिन्ह से ही हुई प्रतीत होती हैं। महावीर का अर्थ हनूमान भी मिला है। ओड़िसा में हम हनूमान को महावीर कहते हैं। ये सब जैन थे, और अगद राज्य के रहने वाले है बाद को जब जैन धर्म चलागया तब यह राज्य कोगद नामसे परिचित हुआ; अर्थात अगद कहाँ, कः अगद; उससे कोगद हुआ माने उड़ीसा से जैनधर्म चलागया।

लगता है कि विमला जैन मकुराइन, शीतला भी, और जगन्नाथ जैन थे। भागवत धर्मका सादृश्य जैन धर्म से है।

जैन 'भगवती सूत्र' में है कि भ० महावीर लाढ देश के एक गाव में गए थे, जहां कुत्ते पालते थे। जैन शास्त्र में एक कहानी है कि ऋषभ ने एक आदमी को गाय पीटते हुए देखा क्योंकि वह नाज खा जाती है। ऋषभ यह दृश्य देखकर करुणार्द्र हो कहने लगे, उसे क्यो मारते हो? उसके मुंह में (चुंडी) ढकना देदो। इस पर वह आदमी बोला, 'वह कैसे दिए जाते हैं? मैं नहीं जानता।' तब ऋषभ ने एक ढकना बनाकर गाय के मुंह में बांध दिया। इसका फल वह हुआ कि गाय नाज नही खा सकी। परन्तु इस तरफ ऋषभ को भी कुछ दिनों तक खाना नही मिला, वे कष्ट पाने लगे 'कर्म का फल भोगना पड़ेगा'-यही इस कहानी का मर्म है।

सारांशतः जैन धर्म की कथावार्ता का प्रभाव उड़ीसा की संस्कृति में मिलता है।

शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
क	२०	आविष्यकार	आविष्कार
,,	२२	हल करने	हल चलाने
ऐ	१७	लिहाई	निहाई
क	२२	दिर्दिष्ट	निर्दिष्ट
,,	२४	रुपष्टरुप में	स्पष्ट रुप से
ग	१६	बोढ	बोउ
,,	१८	बोढ	बोउ
,,	२०	बोढ	बोउ
,,	२३	द्वीपसे	द्वीपमें
घ	१	ईस	ईसा
,,	१०	पूर्न	पूर्व
,,	२२	इलाके	इलाके के
१	१	आदिकालीन का	आदिकालीन
४	६	अनुपात	अनुताप
५	१६	जैनियो	जैनियों की
७	७	नास्ति वक्तव्य	नास्ति अवक्तव्य
६	१२	मौक्ष	मोक्ष
२०	१६	धर्म के	धर्म की
,,	१७	समाज में	आधारित समाज में
,,	२२	अरिष्टनमि	अरिष्टनेमि
२१	२३	जमाने	जमाने में
,,	२६	राज	राजा
		सुसेनजित	प्रसेनजित
,,	२७	पर्श्वनाथ	पार्श्वनाथ
२२	२४	सम्राज्य	साम्राज्य
२३	१२	महाराज	महाराष्ट्र
२४	१७	सर्वदर्श	सर्वदर्शी
२७	१०	पट्टभूमि	पृष्टभूमि
२८	८	यर्पाप	पर्याय
३७	२२	आलाप	आलाप में
३६	६	समाधन	समाधान
,,	१७	प्रमाणिक—	प्रामाणिक—
४२	१८	सगवश	सुवश
४६	१	अन्तिम मात्र का	अन्तिम पाद का मानना
५२	१४	हम	हमे
,,	६५	रमाप्रसाद चद	रामप्रसाद चढा
५७	१	विद्याधरो को	विद्याधरो के
६२	१८	खरवेल	खारवेल
,,	२४	शौमायात्रा	शोभायात्रा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६	६	हुआ था	हुई थी।
७०	१६	करने को	करने के
,,	२४	क	के
,,	२६	धर्मा व भापन्न	धर्मभावा-पन्न
७३	१	और	×
७४	३	और	×
,,	१६	आक्रमण के वश	वश के आक्रमण
७५	४	"मायला पांजि"	मादला पाजि
,,	८	देकर	होकर
७७	२ व ५	'मामला पाजि'	'मादला पाजि'
७६	१३व१५	'मायला पाजि'	'मादला पाजि
८१	३	जो	जिन
९४	८	ग्रन्थोमे	ग्रन्थो में
९५	११	सिलती	मिलती
११०	११	किस्किन्दा	किस्किन्धा
१२३	१३	श्रुतदेनी	श्रुतदेवी
१३३	७	नगणय	नगण्य
,,	१६	निस्मदेह्	निस्सदेह
१४५	८	महात्र	महापात्र
,,	१०	मौधुरी	चौधुरी
,,	२६	चतुरावोट	चतुष्कोट
१४६	७	जैंद	जैन
,,	८	छोटी	छोटी
१४७	७	अरूआ	अरवा